सोमसी

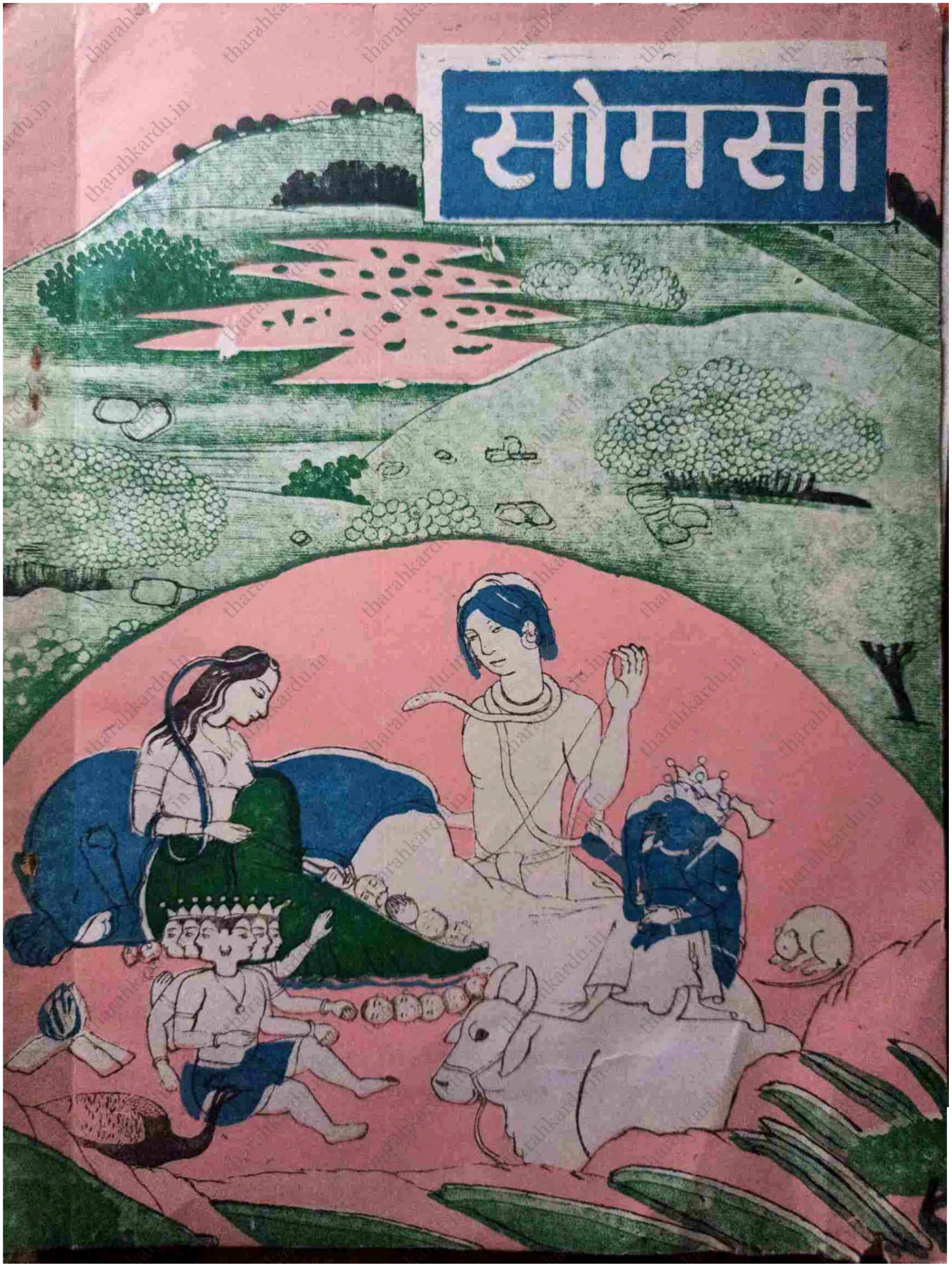

tharahkardu.in

सोमसी

हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी का, त्रैमासिक पत्र

वर्ष 9	अप्रैल, 1983	अंक 6

मुख्य सम्पादक,
अध्यक्ष अकादमी,
सन्त राम शर्मा

सम्पादक
मौलूराम ठाकुर
सचिव

सहयोगी
रमाकान्त जोशी
अनुसंधान अधिकारी

आवरण
ओमप्रकाश

जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्तूबर में प्रकाश्य

३४

लेखक के विचारों तथा दिए गए तथ्यों से सम्पादक की सहमति आवश्यक नहीं।

वार्षिक चन्दा १२ रुपये — एक प्रति ३ रुपये

प्राप्ति स्थान :

हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी

क्लिफ-एन-डी-एस्टेट, शिमला—१७१००१

विषयानुक्रमणिका

क्रमांक	लेख का नाम	लेखक	पृष्ठ
१.	साहित्य में नारी-सौंदर्य	कृष्ण चन्द्र शर्मा	१
२.	लोक कथा के दर्पण में खलिहान की अभिशप्त देवी	ब्रह्मदत्त शर्मा	८
३.	कांगड़ा की चामत्कारिक धर्म कथा पंचभीष्म	रजनी बाला धींगड़ा	१२
४.	हिमाचल प्रदेश में सूर्य पूजा	रमेश चन्द्रा	२०
५.	हिमाचल की नदियां उनका सांस्कृतिक व ऐतिहासिक महत्व	प्रो० चन्द्रवर्कर	२६
६.	पुरातन पहाड़ी रियासतों के आपसी सम्बन्ध और सीमा विवाद	अमर सिंह रणपतिया	३२
७.	भोज परमार की सांस्कृतिक धरोधर अर्की (बाघल)	अमर देव आंगिरस	४४
८.	शिवरात्री पर गाए जाने वाले भक्ति गीत	अमृत कुमार शर्मा	५१
९.	प्राचीन जातियों का शरणास्थल हिमाचल प्रदेश	केशव चन्द्र	५५
१०.	सिरमौरी लोक साहित्य में वीर रस की प्रधानता	गीता शर्मा	६०
११.	देवी हाटेश्वरी की भेंट	पन्ना लाल जोगटा	६७
१२.	चम्बा राज्य द्वारा सम्मानित देवता (नाग मंढोर)	धर्म चन्द कौशल	७०
१३.	कांगड़ा घाटी में गूगा छत्री	रत्न लाल चौधरी	७३
१४.	सिरमौर का प्रसिद्ध माघी त्यौहार	बालक राम जसवाल	७७
१५.	भद्रवाह एक सांस्कृतिक अध्ययन	डा० प्रियतम	८०
१६.	कुल्लू के व्रत पर्व व त्योहार	चन्द्रशेखर बेबस	८५
१७.	डा० कृष्णा रैणा		८६

०—०—०

सम्पादकीय

प्रकृति पूजा में पृथ्वी पूजा बहुत प्राचीन है। धरित्री-माता अर्थात धरती-माता की भावना वैदिक-कालीन है कालान्तर में इसने अनेक रूप धारण किए हैं। हिमाचल के भीतरी भागों में विशेषतः कुल्लू, ऊपरी-महासू, मण्डी, पाँगी, भरमौर में "सेरी-पूजा" की प्रथा प्रचलित है। इसे फसल-पूजा भी कह सकते हैं। परन्तु मूल रूप में यह धरती पूजा है जब गेहूं जौ, धान और मक्की की फसल पक जाती है तो उसे तुरन्त काटा नहीं जाता। प्रथम बार फसल काटने से पहले जमीदार घर से आटा या चावल तथा घी लेकर प्रातः ही बिना कुछ खाए-पीए निराहार खेतों में जाता है बिना नमक के रोटी या चावल पकाता है। उसमें अच्छी तरह से घी विरोता है या हलवा बनाता है चौड़े पत्थर पर उस का कुछ भाग निकालता है। साथ में पहाड़ी धूप जलाता है और खेतों के बीचों-बीच खुले से स्थान पर पक्षियों के लिए छोड़ देता है। तभी इधर-उधर से 'पंछी' (पक्षी) आकर उसे खाने के लिए उतर आते हैं। इन पंछियों में मूलतः कौवे होते हैं। जब तक पंछी पत्थर पर रखे घी से परोसे चावल या रोटी या हलवा को खा नहीं लेते तब तक किसान उनकी प्रतिक्षा में भू-देवता का नाम जपता रहता है। इसे स्थानीय भाषा में "भोजन देना" कहते हैं। जब पंछी 'पूंघ' (भोजन-खा) लेते हैं तब किसान भोजन स्वयं खाता है और फसल में पहली बार दरान्ती लगा कर उसे काटना आरम्भ करता है।

भू-देवता के प्रायः तीन रूप देखने में आते हैं—थान, थनपाल और ओड़ी। इनमें से थनपाल (थानपाल) का वास्तविक महत्व है। चम्बा में इसे खेत्रपाल कहते हैं। यह खेतों से अधिक अन्न देता है। लोग इसे भेड़ या बकरी की बलि देते हैं। सेरी अर्थात खेतों के खण्ड-विशेष में सबसे बड़ी चट्टान अथवा देखने में विचित्र या स्पाट पत्थर को उस सेरी भू-खण्ड का थनपाल अर्थात स्थानपाल माना जाता है। गांव का प्रत्येक घर का स्वामी हर वर्ष नई फसल का प्रयोग करने से पहले उससे पकाया भोजन, हलवा या सतू थनपाल पर चढ़ाता है और उससे बरकत देने और अन्न-धन्न वृद्धि करने की कामना करता है। नई फ़सल आने पर धान, जौ, और गेहूं की कच्ची बालियाँ भी इन पर चढ़ाते हैं। इन की कोई मूर्ति या रथ नहीं होता। परन्तु किसी पुराने समय में ऐसे पूजे जाने वाले थनपाल में से कुछेक ने प्रकट होकर प्रत्यक्ष रूप में गांव की सुख-सुविधा में विशेष योगदान किया है। ऐसे थनपालों के मोहरे, मूर्तियां या रथ बनाए गए हैं और उन्हें मंदिरों में स्थापित किया गया। तब इन्हें "थान" कहा जाता है। कुल्लू के निकट गिलढ़थान थान-देवताओं का विशिष्ट उदाहरण है। कई स्थानों पर सेरी में कोई चट्टान या विशिष्ट पत्थर नहीं होता। तब लोग काफी लम्बा परन्तु कम चौड़ा या मोटा पत्थर लेकर उसका आधा भाग भूमि में गाड़ देते हैं और आधा भाग भूमि से बाहर रखते हैं। इसे लोग नई फसल का हलवा, सतू या भोजन बना कर चढ़ाते हैं। इसे ओड़ी कहा

जाता है ओड़ी शब्द संस्कृत "अद्रि" का अपभ्रंश रूप है। ओड़ी की थनपाल की तरह ही पूजा होती है, परन्तु थान की पूजा सामान्य देवताओं की पूजा के अनुसार हो गई है। ओड़ी लोगों द्वारा ही देवता के रूप में पूजा जाने के उद्देश्य से स्थापित की जाए यह जरूरी नहीं है। इस प्रकार जमीन में लम्बा स्वतः गड़ा पत्थर ओड़ी ही कहलाता है और वह भू-देवता के रूप में पूजा जाता है। ऐसे देवता का एक विशिष्ट उदाहरण शिमला से जुब्बल जाते हुये मार्ग में पहाड़ की चोटी पर स्थित विशालकाय चट्टान है जिसे पढ़े लिखे लोग अब "खड़ा पत्थर कहते हैं। यह मूलतः ओड़ी है और वर्तमान विज्ञान-प्रधान विचारधारा से पूर्व इसे ओड़ी देवता के रूप में पूजा जाता था। लोग दूर-दूर से फूल इकट्ठा करते हुए इसके चरणों मे चढ़ाते थे और यदि फूल, हरी दूब आदि न मिले तो छोटा सा पत्थर ही उसकी शरण में चढ़ा देते थे। यह प्रथा हिमाचल के अनेक स्थानों में प्रचलित है।

प्रकृति पूजा में अग्नि में खाना खाने से पूर्व घी के छींटे डालना या प्रथम ग्रास आग में डालना पहाड़ी लोगों में कोई अपवाद या विशिष्ट बात नहीं। परन्तु अग्नि पूजा का एक क्रूर बर्बर या अशिष्ट रूप भी अनेक स्थानों पर प्रचलित है। जन-धारण के अनुसार मकानों, घरों में आग अकारण नहीं लगती। यह तब लगती है जब अग्निदेव की उपेक्षा की गई हो और वह रुष्ट हो गया हो। तब लोग जलते हुए मकान की प्रचण्ड ज्वाला में जीता-जीता बकरा या भेड़ा फेंक देते हैं। अग्नि शांत हो जाती है। आगे नहीं बढ़ती। साथ के घर बच जाते हैं हानि कम होती है। ऐसी धारणा है।

ऐसी ही प्रथा नदी-पूजा की है। भारी बाढ़ नदी-देव का आक्रोष्ट रूप है। उसे भी बकरे या भेड़े की बलि देकर शांत कराया जाता है। चम्बा के प्रसिद्ध मेला 'मिंजर' के पीछे भी यही भावना काम करती है। मिंजर का मेला श्रावण महीने के दूसरे रविवार को आरम्भ हो कर सप्ताह भर चलता है। ये बरसात के प्रमुख दिन होते हैं और रावि नदी पूरे यौवन पर होती है। इस अवसर पर मिंजर के अन्तिम दिन लोग नदी के किनारे नियत स्थान पर इकट्ठे होकर रावी नदी में मिंजर (गोटा किनारी का बना फूल) दूब-घास, फूल नारियल और पैसे भेंट करते हैं और भैंसे की बलि देते हैं। यद्यपि भैंसे की बलि बन्द कर दी गई है परन्तु कुछ वर्षों तक यह प्रथा प्रचलित थी और भैंसे को नदी में धकेल दिया जाता था। दर्शक किनारे पर बैठे उसका दृश्य देखते थे क्योंकि यह विश्वास किया जाता था कि भैंसे के भाग्य के साथ राजा और राज्य का भाग्य जुड़ा होता था। यदि भैंसा नदी में मर जाता तो वह शुभ लक्षण समझा जाता था कि नदी ने बलि स्वीकार की है। यदि भैंसा नदी पार कर जाता तो भी यह इष्ट का सूचक माना जाता था कि कष्ट दूसरी ओर चले गये हैं। परन्तु यदि भैंसा उसी ओर वापिस जीता निकल आता तो वह अपशकुन का संकेत होता था। कुछ लोगों के अनुसार मिंजर-मेला जल के अधिपति वरुण देवता की पूजा में मनाया जाता है। मेला चाहे वरुण देवता की पूजा में मनाया जाता हो या रावी नदी को शांत करने के लिए, मूलतः यह नदी पूजा का विशिष्ट उदाहरण है। कल्लू में दशहरा के अवसर पर अन्तिम दिन ब्यास नदी के किनारे भैंसे, बकरे, मुर्गे मछली और केंकड़े की बलियों को भी नदी- पूजा का ही उदारण समझना चाहिए।

एम० आर० ठाकुर

साहित्य में नारी-सौंदर्य

— कृष्ण चन्द्र शर्मा

साहित्य फड़कते-धड़कते जीवन की शब्दों के माध्यम से सम्पादित कलात्मक अभिव्यक्ति है। साहित्य की सर्वाधिक मार्मिक विधा है काव्य। काव्य का स्रष्टा सृष्टि में वर्तमान विषय अथवा घटती घटना की अनुभूति को अनन्तर अपनी चेतना से संपृक्त करके पुनः सृजित करता है। हमारे भीतर और बाहर विद्यमान संसार का सृजन जिस प्रकार प्रजापति करता है उसी प्रकार काव्य प्रणेता अपनी अनुभूति के विषय भूत भावादि को भाषा में संग्रहित करके प्रस्तुत करता है। अपनी भावयित्री प्रतिभा तथा नवनवोन्मेषशालिनी कल्पना के उपयोग से वह किसी भी भाव किंवा वस्तु-विशेष के कलात्मक प्राकट्य में सक्षम होता है। तभी कहा गया है कि 'अपारे काव्यसंसारे कविरेव प्रजापतिः।' उसकी लेखनी से अविर्भूत रचना से सत्यं, शिवं, सुन्दरं का संश्लिष्ट रूप निगूढ़ होता है। सत्यं रचना को स्थूल आधार प्रदान करता है। शिवं लोक-मंगल को सूक्ष्म रूप रेखांकित करता है और सुन्दरं उसे प्रभाता द्वारा सुग्राह्य तथा आस्वाद्य बनाता है। इस त्रिपुटी में सुन्दर तत्व ही प्रधान है। तभी सभी प्राचीन तथा भारतीय आचार्यों ने सौंदर्य की महत्ता को स्वीकारा है, भले ही उन्होंने इसे रस, रमणीय, वक्रोक्ति या अन्य नामों से व्यवदिष्ट किया हो।

सौंदर्य व्याख्यातीत तथा परिभाषा के ढांचे-सांचे से बाहर का तत्व है, परन्तु यह सर्व-व्यापक ! शिवं और सत्यं में इसकी सर्वोपरिता स्वीकार्य है। इतना ही नहीं, शिवं और सत्यं का सम्यक उन्मीलन इसके साहचर्य से ही सम्भव है। सौंदर्य के उपासक कीट्स के अनुसार :

A thing of beauty is a joy for ever Its loveliness increases, it will never pass into nothingness.

अर्थात ललित वस्तु शास्वत आनन्द का उत्स है जिसका लावण्य सतत वर्धमान तथा अनश्वर है। कीट्स के विचार में सुन्दर ही सत्य है तथा सत्य ही सुन्दर और केवल यही ज्ञात है तथा यही ज्ञातव्य है। चैनिंग के अनुसार सौंदर्य की सत्ता सर्वत्र है। सभी कुछ सुदय एवं सुदृप्त है।

सुन्दर है विहग, सुमन सुन्दर,
मानव तुम सब से सुन्दरतम ।

प्रजापति की इस शोभन सृष्टि में मानव सुन्दरतम है और मानवों में नारी चारुतम। प्रकृति में भी ऊषा भोर से मनोहर है, निशा निशीथ से अधिक आह्लादजनक है, सन्ध्या तीसरे पहर से बढ़कर रसप्रसू है। नारी चतुर चतुरानन की सर्वोत्कृष्ट कृति है, विरंचि की कमनीयतम

रचना है। नारी के अभाव में पुरुष की पुरुषता खलती है, परन्तु पुरुष के अभाव में भी भामिनी की रूपच्छटा छलती ही है। निःहसन्देह 'सुखस्य ही स्त्रियो मूलम्' कामिनी सृष्टि के कालजयी संगीत की नित्य-नूतन रागिनी में। रमणी पुरुष की आंखों में ही नहीं कौंधती, वृक्षों, पुष्पों, को भी तरंगायित करती है। भारतीय कवियों में वृक्ष दोहद की कल्पना इसी प्रसंग में हुई है। कवि-प्रसिद्धियां हैं कि सीमन्तिनी के आलिंगन से कुरबक, अंगना के नृत्य से कर्णिकार और कोपना के पदाघात से अशोक और विलासिनी के हास्य से चम्पा पुष्पित होते हैं, नवयौवना के स्पर्श से प्रियंगु विकसित होती है तथा रमणी के नर्मवाक्य से मन्दार प्रफुल्लित होते हैं, नारी में आश्रम-प्रश्रय पाकर सौंदर्य पराकाष्ठा पर पहुंचा है। इसमें बला की कशिश है, जौक तो एक बार कह ही बैठे सभी के दिल की बात :

शुक्र परदे ही में उस बुत को हया ने रखा,
वर्ना ईमान गया ही था, खुदा ने रखा।

यदि इस सृष्टि में सौंदर्य की सत्ता सर्वत्र है तो साहित्य में सौंदर्य की दिव्य मूर्ति नारी की सता सर्वत्र है।

यदि नारी सौंदर्य की मूर्ति है तो साहित्य उसकी रसोद्रेचक प्रतिमूर्ति। यदि सौंदर्य सम, सम्मिति, अंग-संहति, सुकुमारता, मृदुता, मधुरता का मनोरम सन्दोह है, तो नारी उसका मूर्तन्त निदर्शन। सुष्ठु उनत्ति आर्दीकरोति चित्तामिति सुन्दर: तस्यभाव: सौन्दर्यम्। इस प्रकार सौन्दर्य वह है जो चित्त को आर्द्रकर दे द्रवित कर दे। यह शक्ति स्त्री में भरपूर है। सौंदर्य को देवियों में भी आवश्यक उपादान माना गया है। श्री दुर्गासुप्तशती में यह ध्यान इस बयान की गवाही देता है—

बालरविद्युति मिन्दु किरीटां पुंग कुजां नयनत्रययुक्ताम्।
स्मेरमुखी वरदांकुशपाशा भीतिकरां प्रमजे भुवनेशमि॥

साहित्य में नारी के कोमल कपोल, मयंक समान मुख, स्निग्ध नेत्र, प्रवाल-वार्मी अधर, होठों की ओट से चमकती दन्त-मुक्तावलि, कम्बु-समग्रीवा, ज्योत्सना सी सौम्य हंसी, बाहुलता में पेशलता की बहुलता, वीणा सी वाणी, पीन पयोधर, कदली-सदश नितम्ब, समतल ललाट सभी का विशद वर्णन हुआ है। प्रसाद की इडा का यह नखशिख वर्णन द्रष्टव्य है—

बिखरी अलके ज्यों तर्क जाल !

वह विश्व-मुकुट सा उज्जवल शशिखण्ड सदृश था स्पष्टभाल दो पदम् पलाश चषक सेहम्, देते अनुराग-विरागदाल गुंजरित मधुप से मुकुल सदृश वह आनन जिसमें भरागान वक्षस्थल पर एकत्र धरे संसृति के सब विज्ञान-ज्ञान था एक हाथ है कर्म-कलश वसुधा-जीवन-रस-भार लिए दूसरा विचारों के नम को था मधुर अभय अवलम्ब दिये त्रिवली थी त्रिगुणतरंगमयी आलोक-वसन लिपटा अराल चरणों में थी गति-भरी ताल।

साहित्य में नारी सौंदर्य आभूषण, अंगराग, सुगन्धि, आदि से सवंलित भी मिलता है। भूषण कवि का प्रतिपादन है।

जदपि सुजात सुलच्छमनी, सुवरन सरस सुवृत्त।
भूषण बिनुन विराजई, कविता बनिता मित्त।

बिहारी की नायिका का केशविन्यास देखिए :

कर समेट, कुच भुज उलटी, खाएं सीस-पटुटारि।
काके मन बांधे न यह, जूरा-बांधनि सरि।

ऐसे वर्णनों में चित्रात्मकता अवश्य है, परन्तु वस्तुतः सौंदर्य को आहार्य अपेक्षित नहीं। मारविका यह मत कि 'न रम्यमाहार्यमपेक्षते' तथा कुसुमदेव का यह कथन कि 'स्वभावसुन्दरं वस्तु न संस्कारमपेक्षते' इस अमर सत्य की उद्घोषणाएं हैं। सौंदर्य चिरस्थायी है, चिरनवीन है। माघ ने क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयताया कहकर इसी तथ्य को उजागर किया है, तन्वंगी को रूप-सज्जा न तो आवश्यक है न ही उसका कृश-पेशल तनु आभरण-भार को वहन-सहन करने में समर्थ है। सच तो यह है कि अलंकार के लिए अलंकार्य की जीवन सत्ता अपेक्षित है।

सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं
मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मी तनोति
इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी
किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्

कहकर सौंदर्य मर्मज्ञ कालिदास ने प्रतिपादित किया है कि हर चीज सुन्दर, सलोनी आकृति की श्री वृद्धि करती है। इसके विपरीत भाम-वादियों ने सौंदर्य को ग्रहीता पर आवृत आश्रित बताया है। सत्य इन दोनों अर्द्धसत्यों के बीच है। सौंदर्य न पूर्णतः वैयक्तिक है न पूर्णतः वैषयिक। सौंदर्य-बोध में स्रष्टा-द्रष्टा दोनों के प्रभाग का सम्यक् समन्वय अपेक्षित है। कवि अनुभूत विषय में से अपनी रुचि के अनुसार सुन्दर तत्व ग्रहण करके उसकी अपनी निर्माती शक्ति के द्वारा पुनः सृष्टि करता है। यह प्रक्रिया सृष्टि-दृष्टि की मिलन स्थली है। प्रमाता कवि की सृष्टि को अपनी अभिरुचि तथा सहृदयता के अनुसार ग्रहण में रसोद्बोधन के उद्देश्य से कवि अपनी अनुभूति को वर्णनाशक्ति के सहारे रूपायित करता है। इसके लिए वक्रोक्ति उपादान बनती है। दाग् के इस शेर में वाग्वैदग्ध्य कितना मार्मिक है :

एक तो हुस्न बला का, उस पे बनावट आफत
घर बिगाड़ेंगे हजारों के, ये संवरने वाले।

कालिदास का यह श्लोक कितना श्रवणीय है :

अपूर्वो दृश्यते वह्निः कामिन्याः स्तनमण्डले
दूरतो दहते गात्रं हृदि लग्नस्तु शीतलः।

और फिर इस सरल शब्द-जाल में क्या कमाल है :

रचना है। नारी के अभाव में पुरुष की पुरुषता खलती है, परन्तु पुरुष के अभाव में भी भामिनी की रूपच्छटा छलती ही है। निःसन्देह 'सुखस्य ही स्त्रियो मूलम्' कामिनी सृष्टि के कालजयी संगीत की नित्य-नूतन रागिनी में। रमणी पुरुष की आंखों में ही नहीं कौंधती, वृक्षों, पुष्पों, को भी तरंगायित करती है। भारतीय कवियों में वृक्ष दोहद की कल्पना इसी प्रसंग में हुई है। कवि-प्रसिद्धियां हैं कि सीमन्तिनी के आलिंगन से कुरबक, अंगना के नृत्य से कर्णिकार और कोपना के पदाघात से अशोक और विलासिनी के हास्य से चम्पा पुष्पित होते हैं, नवयौवना के स्पर्श से प्रियंगु विकसित होती है तथा रमणी के नर्मवाक्य से मन्दार प्रफुल्लित होते हैं, नारी में आश्रम-प्रश्रय पाकर सौंदर्य पराकाष्ठा पर पहुंचा है। इसमें बला की कशिश है, जौक तो एक बार कह ही बैठे सभी के दिल की बात :

शुक्र परदे ही में उस बुत को हया ने रखा,
वर्ना ईमान गया ही था, खुदा ने रखा ।

यदि इस सृष्टि में सौंदर्य की सत्ता सर्वत्र है तो साहित्य में सौंदर्य की दिव्य मूर्ति नारी की नता सर्वत्र है।

यदि नारी सौंदर्य की मूर्ति है तो साहित्य उसकी रसोद्रेचक प्रतिमूर्ति। यदि सौंदर्य मन, नम्मिति, अंग-संहति, सुकुमारता, मृदुता, मधुरता का मनोरम सन्दोह है, तो नारी उसका मूर्धन्य निदर्शन। सुष्ठु उनत्ति आर्द्रीकरोति चित्तमिति सुन्दरः तस्यभावः सौन्दर्यम्। इस प्रकार सौन्दर्य वह है जो चित्त को आर्द्रकर दे द्रवित कर दे। यह शक्ति स्त्री में भरपूर है। सौंदर्य को देवियों में भी आवश्यक उपादान माना गया है। श्री दुर्गासुप्तशती में यह ध्यान इस बयान की गवाही देता है—

बालरविद्युति मिन्दु किरीटां पुंग कुजां नयनत्रययुक्ताम् ।
स्मेरमुखी वरदांकुशपाशा भीतिकरां प्रमजे भुवनेशमि ।।

साहित्य में नारी के कोमल कपोल, मयंक समान मुख, स्निग्ध नेत्र, प्रवाल-वार्मी अधर, होठों की ओट से चमकती दन्त-मुक्तावलि, कम्बु-समग्रीवा, ज्योत्सना सी सौम्य हंसी, बाहुलता में पेशलता की बहुलता, वीणा सी वाणी, पीन पयोधर, कदली-सदश नितम्ब, समतल ललाट सभी का विशद वर्णन हुआ है। प्रसाद की इडा का यह नखशिख वर्णन द्रष्टव्य है—

बिखरी अलकें ज्यों तर्क जाल !

वह विश्व-मुकुट सा उज्जवल शशिखण्ड सदृश था स्पष्टभाल दो पदम् पलाश चषक सेहम्, देते अनुराग-विरागदाल गुजरित मधुप से मुकुल सदृश वह आनन जिसमें भरागान वक्षस्थल पर एकत्र धरे संसृति के सब विज्ञान-ज्ञान था एक हाथ है कर्म-कलश वसुधा-जीवन-रस-सार लिए दूसरा विचारों के नभ को था मधुर अभय अवलम्ब दिये त्रिवली थी त्रिगुणतरंगमयी आलोक-वसन लिपटा अराल चरणों में थी गति-भरी ताल।

साहित्य में नारी सौंदर्य आभूषण, अंगराग, सुगन्धि, आदि से सवंलित भी मिलता है। भूषण कवि का प्रतिपादन है।

जदपि सुजात सुलच्छनी, सुबरन सरस सुवृत्त।
भूषण बिनु न बिराजई, कबिता बनिता मित्त।

बिहारी की नायिका का केशविन्यास देखिए :

कर समेट, कुच भुज उलटी, खाएं सीस-पटु टारि।
काके मन बांधे न यह, जूरा-बांधनि सरि।

ऐसे वर्णनों में चित्रात्मकता अवश्य है, परन्तु वस्तुतः सौंदर्य को आहार्य अपेक्षित नहीं। मारबिका यह मत कि 'न रम्यमाहार्यमपेक्षते' तथा कुसुमदेव का यह कथन कि 'स्वभावसुन्दरं वस्तु न संस्कारमपेक्षते' इस अमर सत्य की उद्घोषणाएं हैं। सौंदर्य चिरस्थायी है, चिरनवीन है। माघ ने क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः कहकर इसी तथ्य को उजागर किया है, तन्वंगी को रूप-सज्जा न तो आवश्यक है न ही उसका कृश-पेशल तनु आभरण-भार को वहन-सहन करने में समर्थ है। सच तो यह है कि अलंकार के लिए अलंकार्य की जीवन सत्ता अपेक्षित है।

सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं
मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मी तनोति
इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी
किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्

कहकर सौंदर्य मर्मज्ञ कालिदास ने प्रतिपादित किया है कि हर चीज सुन्दर, सलोनी आकृति की श्री वृद्धि करती है। इसके विपरीत भाम-वादियों ने सौंदर्य को ग्रहीता पर आवृत आश्रित बताया है। सत्य इन दोनों अर्द्धसत्यों के बीच है। सौंदर्य न पूर्णतः वैयक्तिक है न पूर्णतः वैषयिक। सौंदर्य-बोध में स्रष्टा-द्रष्टा दोनों के प्रभाग का सम्यक् समन्वय अपेक्षित है। कवि अनुभूत विषय में से अपनी रुचि के अनुसार सुन्दर तत्व ग्रहण करके उसकी अपनी निर्मात्री शक्ति के द्वारा पुनः सृष्टि करता है। यह प्रक्रिया सृष्टि-दृष्टि की मिलन स्थली है। प्रमाता कवि की सृष्टि को अपनी अभिरुचि तथा सहृदयता के अनुसार ग्रहण में रसोद्बोधन के उद्देश्य से कवि अपनी अनुभूति को वर्णनाशक्ति के सहारे रूपायित करता है। इसके लिए वक्रोक्ति उपादान बनती है। दाग़ के इस शेर में वाग्वैदग्ध्य कितना मार्मिक है :

एक तो हुस्न बला का, उस पे बनावट आफत
घर बिगाड़ेंगे हजारों के, ये संवरने वाले।

कालिदास का यह श्लोक कितना श्रवणीय है :

अपूर्वो दृश्यते वह्निः कामिन्याः स्तनमण्डले
दूरतो दहते गात्रं हृदि लग्नस्तु शीतलः।

और फिर इस सरल शब्द-जाल में क्या कमाल है :

मैं जाग रहा हूं हिज्र की शब
पर मेरे नसीब सो रहे हैं।

श्रृंगार तिलक का यह श्लोक स्मरणीय है :

दृष्टि देहि मे ! बाले कमलायतलोचने
श्रूयते हि पुरा लोके विषस्य विषमौषधम्।

गरल का उपचार गरल है और नज़र से मारे का इलाज एक और नज़र। बिम्ब-रचना भी अभिव्यक्ति को प्रखर बनाती है। चाक्षुष बिम्ब की कुछ झलक कवि द्वारा प्रस्तुत समस्या और कवयित्री द्वारा उसकी पूर्ति के रूप में इस दोहे में मिलती है :

कनक-छरी-सी कामिनी, काहे कों कटि छीन ?
कटि को कंचन काटि विधि, कुचन मध्य धरि दीन।

यह इस बिम्ब बिहारी की नायिका के सौंदर्य को कैसे प्रकट करता है :

अनरस हूं रस पाइयतु, रसिक रसीली-पास।
जैसे सांठे की कठिन गांठ्यौं भरी मिठास।

रसीली नायिका के रोष के क्षणों में भी रसिक को वैसे ही रस मिलता है जैसे गन्ने की कठोर पोरी में मिठास। बिम्ब विधान से लजीली-सजीली नायिका का रूप और भी निखरता है। मधुर, मदिर नयनों का जादू क्या ? पन्त के लिए भी 'सुदर्शन हुए सुदर्शन चक्र।' झूमती-झूलती, छलती, चलती रासी की बांकी चितवन से पुष्पधन्वा की कमान से छूटा कटाक्ष—बाण इतना घातक लगा दाग को कि चिल्ला उठे बरबस :

तीर तेरे मिजगां से बढ़कर नहीं
कुछ खटकते हैं इसी नश्तर से हम

भर्तृहरि की मयंकमुखी, तन्वी नायिका की नजाकत यह कि द्रुमों की छाया में रात को विचरती सघन पत्तों में से झांकती शीश राशि रश्मियों से भी अपने मुख को बचाती है। क्या अदा है ? तभी तो द्रष्टा फिदा है। ये नाजो नखरे और चुलबुलाहट द्रष्टा के दिलो दिमाग में कुलबुलाहट पैदा करते हैं। 'बाले ! तेरे बाल-जाल में कैसे उलझा दूं लोचन' कहते-कहते शायद पन्त भी घेरे में आ जाते हैं।

अलंकार अभिव्यक्ति के पोषक बनकर सौंदर्य छवि को और उभारते हैं।

वासे कृतारसि भवत्युचित प्रभूणां
पादप्रहार इति सुन्दरि, नात्र दूये।
उद्यत्कठोरपुलकां कुरकण्टकाग्रे—
र्यद्भिद्यते मृदु पदं ननु सा व्यथा मे।

अर्थात खता करने पर गुलाम को लात मारने का अधिकार तो मालिक को है ही, परन्तु सुन्दरि मुझे चिन्ता यह है कि कहीं तुम्हारे पैर के स्पर्श से जनित तीखे पुलक कांटे तेरे पैरे में न चुभ जाई। इस निरंगरुपक अलंकार का अवलम्ब पाकर तन्वंशी की पेशलता पूरी प्रस्फुटित होती है। ऐसे ही उर्मिला की लावण्य-विभा इस भ्रान्ति अलंकार से चमत्कृत करती है।

नाक का मोती अधर कान्ति से, बीज दाड़िम का समझकर भ्रांति से
देखकर सहसा हुआ शुक मौन है, सोचता अन्य शुक यह कौन है

तुलसी अयोनिजा जानकी का अलौकिक रूप वर्णन करते समय उसकी उपमा उसी से करते हैं। यहां अलंकार छूट जाते हैं, उनकी बैशाखी टूटजाती है।

इन सब वर्णनों तथा उदाहरणों से यह अभिप्राय कदापि नहीं की नारी–सौंदर्य ने मात्र गात्र के अराधक पैदा किये हों या केवल उन्नत ग्रौरस्यों की उपासना का भाव मानव-मन में जगाया हो। साहित्यमें नारी सौंदर्य के प्रति निरत–भाव और विरत-भाव दोनों ही मिलते हैं, लेकिन शायद अपनी पराकाष्ठा में ये दोनों भाव त्याज्य हैं। सन्त दादू की यह वाणी सत्य की के कुछ अधिक निकट है कि

नारी बैरिनि पुरुष की, पुरुषा बैरी नारि।

सत्य वास्तव में इसके भी विपरीत है। पुरुष और नारी एक दूसरे को प्रिय हैं। वे एक दूसरे में अपना ही प्रतिरूप देखते हैं और सघन एन्द्रिकता से आगे बढ़ते हैं। तभी कवि को 'तदा सर्वनारीमयदिविशेषम् जगदभूत' की स्थिती दिखाई देती है। अनरुक शतकम में भी नायक की नायिका के बिछोह में सर्वत्र नारी ही नारी के रुप में विचित्र अद्वैतवाद दृष्टिगोचर होता है:

प्रासादे सा दिशि दिशि सा पृष्ठतः सा: पुरः सा।
पर्यंके सा पथि पथि सा तद्वियोगातुरस्य ।।
हं हो चेतः प्रकृतिपर, नास्ति मे कापि सा सा।
सा सा सा सा जगति सकले को ऽयमद्वैतवादः ।।

यह भी सौंदर्य की भांति ससीम में असीम का प्रतिभास है। काव्य-रचयिता और सचेतस प्रमाता दोनों ही आकृति से प्रकृति की ओर बढ़ते हैं, लोल लोचन को छोड़कर चलते नम, वापुणी रम्यता से हटकर अन्तस् की आभा को दृष्टिपथ पर रखने लगते हैं। परकीया के साथ साथ स्वकीया भी उभरती है। महादेवी वर्मा की स्वकीया नायिका वियोग की धधकती ज्वाला में आजीवन जलने के बावजूद अवसान-काल में अपने निष्ठुर-कठोर प्राण-वल्लभ के दर्शन की कामना यों करती है:

दीप सी युग-युग जलूं मैं, पर वह सुभग इतना बता दे।
फूंक से उसकी बुझूं, तब क्षार ही मेरा पता दे।

यह सुनकर सहृदय नतमस्तक हो जाता है। अविचल प्रेमवती कुलांगना वर्षों कात-कात

कर काल यापन करती है और आंसू पीती है, पर आंसू बहाती नहीं। वह साध्वी सिन्दूर घुल जाने पर भी तिल-तिल घुलती रहती है। साकेत की प्रवत्स्यत पतिका ऊर्मिला यह कहकर अपने मन को समझाती है :—

आज स्वार्थ है त्याग भरा, हो अनुराग बिराग भरा।

मैथिलीशरण गुप्त का यह मातृत्व-चित्र तो प्रख्याप्त है ही :—

अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी
आंचल में है दूध और आंखों में पानी

मातृशक्ति का पन्त द्वारा रचित चित्र लोकोत्तर आनन्द से मन को आप्लावित कर देता है :—

हे सृजन शक्ति तू
रजत बनाती रज कण को,
जाड़ में जीवन, जीवन में मन,
मन को संवारती स्वर्मन को।
तुम जननि प्रीति की स्रोतस्विनि,
तुम द्विव्यचेतना, दिव्य-मना,
तुम स्वर्ण-किरण की निर्झरिणी,
आभा-देही, आभा वसना :

और खूब लड़ी मर्दानी, वह तो झांसी वाली रानी थी' शब्दों की पुनरावृत्ति से वीरांगनाओं का स्मरण और वारांगनाओं का विस्मरण अनायास होता है।

सौन्दर्य पर नागरी रूपसी का ही एकाधिकार नहीं, सांवली ग्राम्या को भी स्रष्टा ने बल्गुता का वरदान मुक्त-हस्त से दिया है :—

उन्मद यौवन से उभर
घटा-सी नव अषाढ़-सी सुन्दर,
अतिश्याम वरण,
श्लथ, मन्द चरण,
इठलाती आती ग्राम युवति
वह गज गति।
सर्प-डगर पर
हंसती खलखल
अबला चंचल ज्यों फूट रहा स्रोत तरल।

पन्त की इन पंक्तियों से स्त्री-सुलभ सुषमा की एक और आभा छिटक रही है।

हार्डेन ने ठीक ही कहा है कि नारियां मानवता की नियति की नियामिका पार्थिव नक्षत्रावलियां हैं। स्त्री के अभाव में पुरुष के जीवन का सूनापन प्रतिपल दूना होता जाता है। अज के पास सब कुछ था—अट्टालिका, वैभव, अप्सरा सी तरुणियां, वारुणी। बस इन्दुमती न थी। उसके अभाव में अज के हृदय का प्रत्येक स्पन्दन क्रन्दन बन उठा था। भारतीय धर्म और दर्शन के अनुसार ब्रह्मा ने अपने शरीर को दो भागों में विभक्त करके दक्षिण भाग से पुरुष तथा वाम भाग से वामा को प्रकट किया था। पुरुष और नारी उथले में दो, लेकिन गहरे में एक हैं। तभी उपनिषदों के अनुसार पुरुष नारी को इसलिए प्रेम करता है कि वह ऐसे भाव से अपने से ही प्रेम करता है। शायद तभी पन्त ने प्रकृति पर नारी को आरोपित कर उसका मानवीकरण किया। 'पन्त ने प्रकृति का मानवीकरण नहीं, नारीकरण किया है—यह कहकर भले ही किसी ने चुटकी ली हो, इससे अनजाने में एक अन्तर्निगूढ़ सत्य की ओर इंगित मिलता है। भगवत्ता तथा मातृत्व शायद इसी कारण एक हैं। तभी कबीर कहते हैं :

हरि, जननी मैं बालक तेरा !

वस्तुतः सृष्टा ने नारी को बहु-आयामी, अविकल रूप-लावण्य से अलंकृत किया है। इसे सुचारुरुपेण ग्रहण करने के लिए जरूरी है कि द्रष्टा के 'श्रवण नयनमय नयन श्रवणमय' हों। क्रान्तिदर्शी कवियों ने इसके अनेक आयामों को पकड़ने के भरसक प्रयत्न किये हैं, परन्तु नारी सौंदर्य क्या है, कैसा है, कितना है—ये पृच्छाएं उसके मन में वैसी ही बनी रहीं। अन्त में उसे यह कह कर पराजय स्वीकार करनी पड़ी :

पर जहां तक भी उड़ूं मैं, इस प्रश्न का उत्तर नहीं है।

यदि नारी-सौंदर्य का वर्णन साहित्य में अपूर्ण है तो उसका कारण सौंदर्य की इयत्ता नहीं उसका कारण यह है कि साहित्यकार 'गिरा अनयन नयन बिनु बानी' की असमर्थता से अभिशप्त है।

नारी की बहु-विधि, चित्ताकर्षक सौंदर्य कौमुदी बारे में हम यही कहने पर मजबूर है कि :

ललना का लालित्य स्वयं सहित्य है।
साक्षी पूरे अदब में कुरुप का राहित्य है।

●

श्रमायुक्त, हिमाचल प्रदेश
शिमला-२

लोक कथा के दर्पण में

खलिहान की अभिशप्त देवी--'रूड़ी'

—ब्रह्मदत्त शर्मा

पौराणिक मान्यताओं के अनुसार भारत में ६४ पीठों की कल्पना की गई है । इन में एक जालन्धर पीठ भी है । तंत्र शास्त्रों के अनुसार यह पीठ सर्वोत्तम है और तंत्रिक सिद्धियों के लिए उपयुक्त है । ब्रह्माण्डादि पुराणों में इस पीठ की परिक्रमात्मक यात्रा का विधान है । इस का क्षेत्र व्यास नदी से लेकर धौलाधार तक विस्तृत है । जालन्धर पीठ दीपिका के अनुसार इस पीठ के चार द्वार हैं । दक्षिण द्वार कालेश्वर से यात्रा आरम्भ करने का निर्देश है । यात्रा मार्ग कालेश्वर से पौंग बान्ध में जलमग्न नृहरि (नरयाणा), वहां से चामुण्डा, ततद कुन्जेश्वर होकर सुजानपुर से नादौण होता हुआ चमुक्खा तक जाता है । यह पीठ की एक परिक्रमा है । पुनः भीतरी परिक्रमा के लिए चमुक्खा से ज्वालामुखी आदि पवित्र तीर्थों की यात्रा का निर्देश है ।

चमुक्खा से यदि ज्वालामुखी को पैदल जाएं तो नदी को पार करके दो कि० मी० की दूरी पर रास्ते से बांई ओर ढेर के आकार की एक त्रिभुज के समान वर्तुलाकार पहाड़ी स्थित है । इसी का नाम रूड़ी है । पंजाब में रूड़ी शब्द खाद के ढेर के लिए ही रूढ़ हो गया है । होता तो वह भी कूड़े, कचरे, गोबरादि ढेर ही हिमाचल प्रदेश में सभी पदार्थों के ढेर को रूड़ी कह दिया जाता है । दूर से देखने में यह पहाड़ी अनाज के ढेर सी ही प्रतीत होती है । और इस के उत्तर की ओर दूर तक फैले भू-भाग भी ऐसे प्रतीत होते हैं, मानों खलिहान से उड़ाई तूड़ी (भूसी) तह-दर-तह बिछी हो । उसी रूड़ी को लेकर एक बोधात्मक लोक कथा भी प्रचलित है ।

पुराने—पुराने समय की बात है कि व्यास नदी और काली धार के मध्य में स्थित इस सुन्दर स्थान पर झोंपड़ी बना कर एक तपोलीन गोत्रिय ब्राह्मण रहा करता था । वह भूख मिटाने के लिए घर घर जाकर मांगता नहीं था, अपितु फसल की कटाई पर खेतों में जाने से जो कुछ मिल जाता था, उसी से क्षुधा-निवृत्ति कर लिया करता था । निर्धन होने पर भी उसका तप प्रचण्ड था । और साधना गहरी । परिवार में थी केवल मात्र एक अबोध बालिका । सीमित परिवार, सन्तोषी जीवन और तप ही उसका साध्य था ।

फसल पक गई किसान कटाई करने लगे । तपस्वी ब्राह्मण भी खेतों की यात्रा के लिए निकल पड़े । किसान तपस्वी के आगमन को शुभ मानते थे । उसके आगमन को अपना सौभाग्य मान कर गेहूँ की बालियां आदर पूर्वक भेंट करते थे । जिन खेतों में तपस्वी नहीं पहुंच पाता था, उन खेतों के किसान उसके पधारने के लिए आदर पूर्वक अनुरोध करते थे । तपस्वी अपने

पदार्पण से किसानों को कृतकृत्य और स्वयं को अन्न संग्रह द्वारा निर्वाह की चिन्ता से मुक्त करता रहता था। तपस्वी भी सिद्धान्त का पक्का था। गेहूं की बालियों की एक मुट्ठी भर ही स्वीकार करता था। इस से अधिक भी अगर कोई किसान श्रद्धावश देना चाहे, तो भी वह नहीं लेता था।

गेहूं की पर्याप्त बालियां जब इकट्ठी हो गईं, तब ब्राह्मण ने खलिहान तैयार करके, उस में गहाई के लिए गेहूं डालदी। यथोचित गहाई हो जाने पर उसकी पुनाई (भूसी से अन्न को अलग करना) आरम्भ की।

योगमाया की कृपा कहो या तपोबल का प्रभाव अथवा कठिन परीक्षाकाल। संयोग से हुआ यह कि पुनाई के समय गाहण का विस्तार होता गया, अनाज का ढेर बढ़ता गया। और उड़-उड़ कर भूसी पास के लम्बे चौड़े क्षेत्र में तह-दर-तह बिछती गई। सामने था आसमान को छूने वाला अनाज का ढेर और दूर-दूर तक परत-दर-परत बिछी भूसी। तपस्वी सन्तुष्ट था। जीवन भर के लिए निर्वाह की चिन्ता से मुक्ति जो मिल गई थी। अनाज का ढेर वहीं रहा। भला उस छोटी सी झौंपड़ी में वह समाता भी कहां?

प्रातः काल दैनिक कृत्य से निवृत होने पर अभ्यास के अनुसार जब खेतों में जाने का समय आया, तब ब्राह्मण को कुछ बेचैनी सी अनुभव हुई। ढेर को देख मिला सन्तोष गायब हो गया। उसने अपनी अबोध बालिका को उठा कर अकाज के ढेर की चोटी पर बिठा दिया कि वह यहां बैठी अनाज की रक्षा करती रहेगी और स्वयं पुनः गेहूं उगाहने खेतों की ओर चल दिया। जाने से पहले लड़की को भली-भांति समझाता भी गया कि बेटी, अगर तुझे कोई पूछे कि तेरे पिता जी कहां गए हैं, तो यह कभी न बताना कि वे तो गेहूं लाने खेतों में गए हैं। मन में चोर जो बस गया था। प्रचण्ड तपस्वी को लोभवश झूठ बोलने पर ग्लानि की अनुभूति भी न हुई।

संयोग यह हुआ कि उसी दिन तपस्वी के जाने के थोड़ी ही देर बाद गुरु गोरखनाथ जालन्धर पीठ की बाहिरी परिक्रमा पूरी करके भीतरी परिक्रमा के लिए चमुक्खा से ज्वालामुखी को जाते हुए उस ब्राह्मण की झौंपड़ी के पास पहुंचे। रास्ता जो यही था। पहले भी वे उसी रास्ते से आया करते थे और ब्राह्मण के पास बैठ कर कुशल-क्षेत्र पूछते-पूछते सुस्ता लिया करते थे।

उस दिन भी गगन चुम्बी अनाज के ढेर और पास ही उड़ उड़ कर बिछी भूसी को देख कर सभी कुछ समझ गए। अन्तर्यामी जो थे। ढेर पर बैठी लड़की से पूछ ही लिया "बेटी, तेरे पिता जी कहां हैं?" सत्यप्रिया लड़की पिता द्वारा मना करते पर भी झूठ न बोल पाई। उसने सच ही कह दिया "महाराज, वे गेहूं उगाहने खेतों में गए हैं।" यह सुनकर गुरु गोरखनाथ जी को तपस्वी ब्राह्मण के लोभातिशय को जानकर दुःख हुआ। उस दुःख ने प्रचण्ड क्रोध का रूप धारण कर लिया। फिर क्या था। क्रुद्ध गुरु ने लोभी ब्राह्मण को शाप दे ही डाला कि—

'हे तपस्विन्, सन्तोष ही ब्राह्मण का धन है। अपरिमित अन्न होने पर भी तू सन्तुष्ट

नहीं हुआ, तो जा, तेरा यह सारा अन्न का ढेर मिट्टी का ढेर होगा।" बस, गुरु जी महाराज के मुँह से इतनी बात निकलते ही वह गगन चुम्बी अन्न का ढेर मिट्टी हो गया। ढेर पर बैठी बालिका होनहार को देखती-देखती भावी की प्रतीक्षा करने लगी।

शाप का परिणाम देखते-देखते गुरु जी तो अपने यात्रा-पथ पर चलते बने और पीछे से गेहूं का बोझ उठाए लोभी ब्राह्मण भी आ पहुंचा। अन्न के ढेर को मिट्टी हुआ देख कर खून आंखों में उतर आया। तड़फ कर लड़की से पूछा 'सच बता, यह क्या हुआ ?" लड़की बोली पिता जी, इस रास्ते से गुरु गोरख नाथ जी जा रहे थे कि मुझे ढेर पर बैठा देख कर पूछने लगे बेटी, तेरे पिता जी कहां है ?" पर मैं......, मैं आपके कहे अनुसार झूठ न बोल सकी सच ही कह दिया "महाराज, वे तो गेहूं उगाहने किसानों के खेतों में गए है" सुन कर गुरु जी ने अनाज के ढेर को मिट्टी का ढेर होने और आप को सदा असन्तुष्ट रहने का शाप दे डाला। यह मिट्टी का ढेर उसी का परिणाम है।

लोभी ब्राह्मण क्रोध से पगला गया, विवेक को खो बैठा और बेटी से बोला—"तूने मेरी आज्ञा का पालन नहीं किया, अतः जा तेरी भी यही गति हो।" उस लोभी का तपोबल अति प्रचण्ड था। देखते-देखते वह बालिका पाषाण मूर्ति बन गई।

यात्रा के प्रसंग में गुरु गोरख नाथ का उस रास्ते से एक बार फिर आना हुआ। बालिका की पत्थराई मूर्ति को देख कर समझ न पाए कि यह किस दुष्ट की करतूत है। उन्होंने पाषाण प्रतिमा की ओर प्रश्न भरी दृष्टि से देखा कि पाषाणी बोल उठी 'महाराज, यह मुझे सच बोलने की सजा मिली है।" सुन कर गुरु जी को पुनः क्रोध उतर आया और बोले—"रे हृदयहीन ब्राह्मण, लोभ के कारण तू बेटी के वात्सल्य को भी खो बैठा, अतः जब तू उसे वात्सल्य भरी नजर से देखेगा, तब तेरी भी यही गति होगी।" फिर पाषाणी से बोले "बेटी, तेरे पिता का तप इतना प्रचण्ड है कि उसका दिया शाप टल नहीं सकता, तथापि मैं तुझे वरदान देता हूं तेरी सदा देवीवत् पूजा होती रहेगी। कहकर गुरूजी तो भारी मन से अपने रास्ते चले गए।

कई दिनों के पश्चात् ब्राह्मण को बेटी की याद आई। वात्सल्य से हृदय भर आया। वह पाषाणी को गले लगाने के लिए उस ढेर पर तीव्र गति से चढ़ने लगा। पास पहुंच कर ज्योंही उसकी प्यार भरी नजर पाषाणी पर पड़ी, त्योंहीं वह भी गुरु गोरख नाथ के अभिशाप से पथरा गया।

रूड़ी (ढेर) के शिखर पर पथराई उस देवी की मूर्ति को श्रद्धालु आज भी पूजा करते हैं। नया अन्न घर लाने से पहले ही उसको भेंट करते हैं, दूध-दही भी अर्पित करते हैं। पास ही उसके बीच पथराई ब्राह्मण-मूर्ति भी याद करवाती है कि 'लालच बुरी बला है'।

लोक जीवन में श्रद्धा के साथ समाया यह रूड़ी स्थान सुन्दर है। चढ़कर रास्ते के बाईं ओर पाषाणी विराजमान है। उसके नीचे विशाल भू-भाग ऐसा प्रतीत होता है, मानों परत-दर-परत भूसी बिछी हो। पीठ के पीछे व्यास नदी की नीली और सर्पाकार धारा और पौंग बांध का जलागार भी

दिखाई देता है। प्राचीर के समान धार ढांगू सोहल सिंगी के किलों से लेकर पौंग बान्ध तक फैली दिखाई देती है। इसी धार की गोद में बिछा सड़कों का जाल और प्राग पुर, देहरा आदि नगर देखे जा सकते हैं। दाईं ओर नादौन स्थित पवित्र गुरुद्वारे के दर्शन हो जाते हैं। सामने कालीधार पहरेदार के समान अड़ी खड़ी है। इसी कालीधार के तल में माता ज्वालामुखी का मन्दिर भी जगमगाता रहता है। कच्ची सड़क से यद् यह स्थान शिमला-धर्मशाला मार्ग से जुड़ा है। चबूतरे से युक्त वट वृक्ष बहुत सुहाना प्रतीत होता है।

पाषाणी से नीचे साथ ही पेय जल-पूर्ति योजना के अधीन जलभण्डारण के लिए टैंक बन गया है। आस पास की भूमि भूमि-हीनों को बांट दी है। शिमला निवासी सेठ श्री अमर चन्द जी ने देबी के मन्दिर का निर्माण कर इस लोककथा और पाषाणी को स्थायित्व प्रदान किया है।

पाषाणी का मुंह ज्वालामुखी की ओर है, मानों वह गुरू गोरख नाथ जी की प्रतीक्षा में बैठी हो कि वे कभी आएं तो मैं उनसे मन की बात कह सकूं।

●

अध्यक्ष साहित्य परिषद (रजि०)
अपर बाजार नादौन जिला हमीरपुर (हि० प्र०)

कांगड़ा की चामत्कारिक धर्म कथा
पंच भीष्म

— रजनी बाला धींगड़ा

कांगड़ा

प्रकृति की अमर विभूतियों से परिपूर्ण कांगड़ा हिमाचल प्रदेश की एक रमणीय घाटी है। यह धौलाधार के आंचल में बसा हुआ मनोहरी स्थल है। इस के सौंदर्य से प्रभावित होकर कर्नल हरकोर्ट ने यहां तक कह दिया है कि, 'विश्वभर में इसके समा, नान्तर प्राकृतिक शोभा वाला क्षेत्र अन्यत्र नहीं देखा' †। यहां के लोग देखने में सुन्दर-व्यवहार में निष्कपट है। यह हरे-भरे वृक्षों, नदियों, घाटियों और अपनी संस्कृति तथा अतिथि प्रेम के लिए प्रसिद्ध है। झीलों, झरनों और मन्दिरों की इस घाटी को देवी-देवताओं की निवास भूमि भी कहा जाता है। नैसर्गिक प्राकृतिक सौंदर्य को देखकर मि. बार्नस ने कहा है कि 'मुझे विश्व के किसी भी क्षेत्र में ऐसा अभिन्न प्राकृतिक सौंदर्य दिखाई नही देता †। नदियों का कल-कल निनाद करता हुआ विरल प्रवाह बांसों के झुरमुट, भेड़-बकरियों का घाटियों में चरना, चाय के ढलानी खेतों से सजा कांगड़ा हमारे मन मोह लेता है।

सन १९६६ से पूर्व कांगड़ा पंजाब का शृंगार था। इसकी भौगोलिक सीमाएं सुदूर कुल्लू, मनाली, लौहोल स्पीति तक फैली थी। कांगड़ा का प्राचीन नाम त्रिगर्त था। त्रिगर्त की राजधानी नगरकोट या भीमकोट थी। 'कोट' शब्द किले के लिए प्रयोग किया है। यह किला आज भी खण्डहरों के रुप में स्थित है।

लोक कथा का अर्थ

लोक कथाएं सरस कहानियां होती हैं। ये पीढ़ी-दर पीढ़ी मौखिक रूप से चलती रहती हैं। विश्व की प्रत्येक जाति की अपनी कथाएं हैं। पहाड़ी जीवन में लोक कथाओं का अपना महत्व है। लोक कथाएं लोकसाहित्य का विशिष्ट अंग हैं। लोककथा 'लोक' और 'कथा' शब्द से बना है। 'लोक' शब्द का व्युत्पति मूलक अर्थ है—देखने वाला अर्थात 'ऐसा जनसमुदाय जो किसी घटना दृष्यआदि का कर्ता अथवा अवलोकन कर्ता हो †।

---

† डॉ॰ गौतम व्यथित, ढोलरू पृ॰ ११

† डॉ॰ गौतम व्यथित, शमे धरती माए लोबा, पृ॰ १

† डॉ॰ सुशील कुमार फुल्ल, हिमभारती, जून, १९८२, पृ॰ १

लोक शब्द के लिए 'जन' शब्द का प्रयोग भी किया जाता है। परन्तु 'जन' शब्द की अपेक्षा 'लोक' शब्द का प्रयोग अधिक उचित जान पड़ता है। 'कथा' का अर्थ है कहना। 'कथा' शब्द की उत्पप्ति संस्कृत की 'कथ' धातु से हुई है। 'कथ' का अर्थ है कहना, घोषणा करना, वार्तालाप करना, वर्णन करना, सूचना देना †। कल्पित कथा वस्तु वाली रचना कथा कहलाती है † ।

अतः लोक कथा से अभिप्रायः ऐसी कथा से है जो लोक मानस से उद्‌भूत हुई हो तथा जो मौखिक परम्परा द्‌वारा जीवित चली आई हो।

लोक कथाएं कई प्रकार की होती हैं (क) धर्म कथाएं, इनमें धर्म तत्व की प्रधानता होती हैं। (ख) साधारण कथाएं, इनमें परियों, दैत्यों, अद्‌भुत पात्रों के बारे में कहानियां होती है। इन कथाओं के अतिरिक्त कई कथाएं ऐसी होती हैं जिनमें प्रेम आदि की कहानियां होती हैं।

कांगड़ा की धर्म कथाएं

चूंकि कांगड़ा को देवी-देवताओं की भूमि कहा जाता है इसलिए यहां पर बहुत अधिक धर्म-कथाएं प्रचलित हैं। यहां की मुख्य धर्म कथाएं हैं होई अष्टमी, परछठ, सैर पंचभीष्म। इसके अतिरिक्त और भी कथाएं प्रचलित है उनका अपना-अपना महत्व है परन्तु पंच भीष्म की कथा बहुत अधिक महत्वपूर्ण मानी जाती है।

पंच भीष्म व्रत कथा

पंच भीष्म शब्द 'पंच और 'भीष्म' शब्दों से बना है। 'पंच' का अर्थ भयानक कठिन अर्थात ऐसा कठिन व्रत जो पांच दिन चलता है। भीष्म नाम प्राचीन काल से चला आ रहा है क्योंकि इस कठिन व्रत को भीष्म पितामह ने भी किया था। यह व्रत कार्तिक मास में किया जाता है।

पंच भीष्म कथा के प्रचलित रूप

(क) किसी गांव में एक बुढ़िया और उसकी बेटी रहती थीं । वे प्रतिदिन दो रोटियां बनाती थी—एक बड़ी और एक छोटी। बड़ी रोटी बुढ़िया खाती थी और छोटी रोटी उसकी बेटी। एक दिन बुढ़िया कहीं गई थी तो बड़ी रोटी उसकी बेटी ने खा ली। लौटने पर बुढ़िया ने अपने लिए छोटी रोटी रखी देख कर बड़ी रोटी के लिए शोर मचाना शुरू कर दिया। उसके शोर को सुन कर लड़की घर से भागकर जंगल में

---

† वामन शिव राम आप्टे संस्कृत हिन्दी कोष १९६६ पृ० २४२

† मणि प्रभाटीका, प्रबन्ध कल्पना कथा, अमरकोष १९५७, पृ० ५८

राजा ने रानी से पूछा ! रानी पहले तो टालती रही लेकिन राजा के बार-२ पूछने पर बोली 'आप मुझसे मत पूछिए, आप पछताएंगे।' परन्तु राजा न माना। रानी ने पहले की भांति तुलसी का पूजन किया और वहां बैठ कर शुरू से अन्त तक सारा वृत्तान्त सुनाने के पश्चात वह अलोप हो गई।

(कथा – २)

किसी गांव में एक सेठ-सेठानी रहते थे। उनकी कोई सन्तान न थी। उन दोनों ने बच्चा प्राप्त करने के लिए व्रत-दान, साधु सन्तों की सेवा भी की परन्तु सब व्यर्थ। सेठ दूसरी शादी करने की बात सेठानी से कहता है। सेठानी पंडित को सिखा देती है कि जब सेठ अपना टेवा दिखाने के लिए उसको बुलाए तो वह कह दे कि उनके घर बच्चा अवश्य होगा। सेठ के बुलाने पर पण्डित सेठानी की बात को दोहरा देता है। सेठ दूसरी शादी करने का विचार छोड़ देता है। पर्याप्त समय बाद सेठ को सूचना दी जाती है कि उनके घर लड़की हुई है परंतु सेठ उसको उम्र भर देखेंगे नहीं। सेठानी ने एक बिल्ली पाली हुई होती है वह उस बिल्ली को अन्दर ही रखती है, बाहर नहीं निकालती। सेठ एक दिन लड़की के लिए पायल लाता है। सेठानी बिल्ली के पैरों में बांध देती है। सेठ पायल की आवाज सुनकर प्रसन्न होता है कि अन्दर उसकी बेटी घूम रही है।

काफी समय बाद सेठ ने लड़की की शादी करने की सोची। उसके लिए लड़का भी ढूंढ लिया। सेठानी ने लड़के वालों के लिए आगे यह शर्त रखी कि वे लड़की को आयुपर्यन्त देखेंगे नहीं। वे मान गये। धूमधाम से शादी कर दी गई। सेठानी ने बिल्ली को पिटारे में बन्द करके उसके ससुराल भेज दिया। कार्तिक मास की एकादशी को उस लड़की की सास ने पंचभीष्म का व्रत रखा जो पांच दिन चलता है। वह सोचने लगी कि मैंने तो स्नान करने जाना है, पीछे से इन दीपों को वैसे ही जलता हुआ छोड़ कर चली जाती है। उसके जाने के बाद बिल्ली पिटारे में से निकली उसने तुलसी के आगे से सफाई की और दीपकों में तेल डालकर फिर पिटारी में चली गई। पांच दिन लगातार वह ऐसे करती रही। जैसे-२ उसके शरीर को तेल लगता गया उसके अंग सुन्दर लड़की के बनते गए और पांचवें दिन वह एक सुन्दर लड़की बन गई। लड़की की सास ने उससे सारी बात पूछी तो लड़की ने तुलसी पूजन की महिमा का गुणगान करते हुए सारा वृतान्त अपनी सास से कह सुनाया।

दोनों कथाओं में समानता

पंचभीष्म व्रत कथा के दोनों प्रचलित रूपों में काफी हद तक समानता पाई जाती है। दोनों कथाएं चमत्कार प्रधान हैं। पहली कथा में रानी तुलसी का पूजन करके विनती करके जो मांगती है वही उसे प्राप्त हो जाता है। पहले वह मां के शव को सोने का

एक तालाब पर पहुंच गई। कुछ देर आराम करने के लिए वहां बैठ गई। जंगल में शिकार के लिए राजा आया हुआ था। उसे प्यास अनुभव हुई। उसने मंत्री को पानी लेने के लिए भेजा। मंत्री पानी लेने उस तालाब पर पहुंचा जहां वह लड़की बैठी हुई थी। लड़की ने मंत्री से बर्तन लेकर उसे अच्छी तरह साफ करके पानी भर कर दे दिया। राजा पानी के बर्तन को साफ देखकर पूछता है 'कि यह बर्तन किसने साफ किया है ?' मंत्री सारी बात बता देता है। राजा मंत्री को वहां चलने के लिए कहता है। राजा लड़की पर मोहित हो जाता है और उसको अपने साथ ले आता है। दोनों शादी करके सुखपूर्वक रहने लगते हैं।

दूसरी ओर वह बुढ़िया 'बड़ी रोटी' का शोर मचाती तथा अपनी बेटी को ढूंढती हुई उस तालाब पर पहुंच जाती है। दैवयोग राजा उस दिन फिर शिकार खेलने के लिए गया हुआ था। उसने बुढ़िया को अपने साथ चलने के लिए कहा। बुढ़िया राजा के साथ महल आ गई और वहां पर काम करके सुखपूर्वक रहने लगी। परन्तु एक दिन रानी के सिर में तेल लगाते समय एक सुनहरा बाल देखकर उसे अपनी बेटी की याद आ जाती है। वह रोने लगती है। रानी के पूछने पर सारी बात बता देती है। रानी बताती है कि वही उसकी लड़की है। इतना सुनते ही बुढ़िया फिर 'बड़ी रोटी' की रट लगाती है। लड़की घबरा कर बुढ़िया को मार देती है और उसका शव एक पिटारे में बन्द कर देती है।

कुछ समय उपरान्त राजा के यहां नाई आया। उसने राजा से उस पिटारे की ओर इशारा करते हुए उसे न खोलने का कारण पूछा। राजा ने टाल-मटोल की परन्तु नाई के बार-बार कहने पर राजा ने रानी से पूछा कि 'इस पिटारे में क्या है ?' रानी ने तुलसी की सफाई की। वहां दीप जलाए और विनती की कि हे मां तुलसी ! यदि सचमुच तु सच्ची है तो पिटारे में सोने का मोर बन जाए' रानी राजा को बताती है कि उस पिटारे में सोने का मोर है।

पिटारा खोलने पर उसमें सोने का मोर निकलता है। कुछ दिनों बाद नाई ने राजा से रानी के बारे में पूछा कि 'महाराज आप कभी अपने ससुराल नहीं गए। आप के ससुराल कहां हैं ? रानी से पूछिए'। राजा ने रानी से उसके मायके के बारे में पूछा। रानी ने फिर तुलसी का पूजन करके प्रार्थना की कि कुछ दिनों के लिए उसके मायके बन जाएं और रानी राजा को किसी स्थान का नाम बता देती है। राजा और नाई रानी के बताए हुए स्थान पर जाते हैं। वहां उनका बहुत बहुत आदर किया जाता है। कुछ दिनों के बाद वे वापिस लौट आते हैं। परन्तु नाई अपनी धोती वहां छोड़ आता है। धोती लेने के लिए नाई वापिस जाता है परन्तु वहां उसने कौओं, गिद्धों को मास खाते हुए पाया लौटकर आने पर उसने राजा को सारी बात बताते हुए कहा कि 'महाराज आपकी रानी तो कोई डायन है। आप उससे जरूर पूछिए कि व कौन है ?'

बनाने की प्रार्थना करती है तो सोने का मोर बन जाती है। फिर कुछ दिन के लिए उसके भूठ के मायक बन जाते हैं। यह एक चमत्कार है। ऐसा ही चमत्कार हमें दूसरी कथा में मिलता है। बिल्ली की सास व्रत करती है, तुलसी पूजन करती है, दीपों में तेल डालती है और एक सुन्दर लड़की बन जाती है।

(१) दोनों कथाओं के पात्रों में भी समानता है दोनों कथाओं के पात्र मानव है कवल दूसरी क था में एक पात्र बिल्ली है जो कि बाद में सुन्दर लड़की बन जाती है।

(२) कथाओं की एक और समानता तुलसी पूजन है। पहली कथा में भी रानी तुलसी का पूजन करती है और दूसरी कथा में भी बिल्ली की सास तुलसी का पूजन करती है और व्रत रखती है।

विभिन्नता

पंचभीष्म की इन कथाओं में कुछ विभिन्नता भी पाई जाती है। एक कथा के सारे पात्र मानव हैं जबकि दूसरी कथा का एक पात्र बिल्ली है।

चमत्कारों में भी विभिन्नता है। एक में मृत स्त्री सोने का मोर बन जाती है। अन्त में रानी आलोप हो जाती है, जबकि दूसरी कथा में बिल्ली एक सुन्दर लड़की में परिवर्तित हो जाती है।

तुलसी क्या है

तुलसी एक प्रकार का पौधा होता है जो भारतवर्ष में प्रत्येक परिवार में प्रायः मिलता है। तुलसी का नाम तुलसी कैसे पड़ा, इसके सम्बन्ध में यह कथा प्रचलित है कि धर्मध्वज की कन्या बृन्दा थी † वह बहुत तपस्वी थी। उसकी शादी शंखचूड़ † नामक असुर से हुई थी। जब शंखचूड़ का असुर राज्य पर अभिषेक हुआ तो उसने देवताओं के अधिकार छीन लिए। देवताओं ने ब्रह्मा से विनती की। वहां वे विष्णु के पास गए, फिर वे शिव की शरण में पहुंच गए और अपने आने का कारण बताया। शिव ने असुरों को युद्ध के लिए ललकारा। सारे असुर तो मारे गए परन्तु शंखचूड़ अपनी पत्नी बृन्दा की तपस्या के बल पर जीवित था। विष्णु ने शंखचूड़ का वेष धारण करके बृन्दा का शील हरण कर लिया और उसकी तपस्या भंग हो गई, शंखचूड़ मर गया। बृन्दा को विष्णु के धोखे का पता चल गया। वह शाप देने ही लगी थी कि विष्णु ने एक स्थान पर कुछ बीज फेंके और यह वचन दिया यहां पर एक पौधा पैदा होगा उसका नाम तुलसी होगा। वह पौधा तुम होगी तुम्हारे बिना मेरी पूजा निष्फल मानी जाएगी, तब से तुलसी नाम प्रचलित है।

---

† शिव पुराण में बृन्दा के नाम के स्थान पर तुलसी नाम ही मिलता है।

† व्रत-कथाओं की पुस्तकों में शंखचूड़ का नाम तारकासुर मिलता है।

तुलसी दो प्रकार की होती है जंगली तुलसी जिसे अंग्रेजी में Ocimum Red कहते हैं तथा दूसरी साधारण तुलसी जिसे Ocimum Sanctum कहते हैं। साधारण तुलसी को राम तुलसी भी कहते हैं। कहा जाता है कि जब हनुमान जी ने यह दिखाने के लिए कि उनके हृदय में राम लक्ष्मण और सीता बसे हुए हैं, अपनी छाती को फाड़ा था तब श्री राम चन्द्र जी ने तेल और सिन्दुर उनके घावों पर लगाया था तथा तुलसी खाने को दी थी ताकि घावों में मवाद न भर जाएं तब से इसका नाम राम तुलसी पड़ा। तेल और सिन्दुर को मिलाकर काली मल्लम बनती है जिससे घाव भर जाते हैं।

कथाओं का उद्देश्य

दोनों कथाओं का उद्दश्य तुलसी पूजन है। तुलसी पूजन के दो कारण हैं (क) धार्मिक (ख) वैज्ञानिक

धार्मिक उद्देश्य

शास्त्रों में कहा गया है कि आषाढ़ मास की एकादशी को भगवान विष्णु शेष नाग की शैया पर छः मास के लिए सोते हैं। इस एकादशी को हरिशयनी एकादशी कहते हैं। कार्तिक मास की एकादशी को भगवान जागते हैं जिसे हरिप्रबोधिनी एकादशी कहते हैं। इस कारण लोग व्रत रखते हैं ताकि घर में रौनक रहे। तुलसी पूजन इस लिए करते हैं कि तुलसी भगवान विष्णु को बहुत प्रिय है। भगवान को प्रिय चीज का पूजन करने पर भगवान अवश्य प्रसन्न होंगे ऐसा लोगों का विश्वास है। इसीकारण प्रभु चरणामृत में तुलसी डालते हैं अपना समय हम ईश्वर चिंतन में व्यतीत करते हैं। तुलसी का पौधा जहां पर होगा वहां का वातावरण निर्मल होगा और हमारा मन भी शुद्ध होगा।

इसके पूजन का उद्देश्य यह है कि इससे कई रोग दूर हो जाते है जिस प्रकार हम उंगली में कोई रत्न पहनते हैं तो उसका छोटे से छोटा अणु हमारे अन्दर जाता है उसी प्रकार तुलसी का पूजन करने पर वहां का वायुमण्डल बिल्कुल शुद्ध होता है तथा तुलसी की शक्ति का छोटे से छोटा कण हमारे अन्दर जाता है मारे कई रोग ठीक हो जाते हैं।

ऐसा भी विश्वास किया जाता है कि जिस घर में तुलसी पूजन होता है वहां पर भूत-प्रेत निवास नही करते तथा तुलसी के पुजारी को स्वर्ग की प्राप्ति होती है। इससे सम्बन्धित एक कथा देखिए † श्री ठाकुर साहब लदाणा (जयपुर) के पास एक सज्जन

† सत्यकथा अंक, कल्याण, पृ० ३७३

आए। उनके गले में तुलसी की कंठी बन्धी हुई थी। ठाकुर साहब ने उनसे कंठी पहनने का कारण पूछा। उन्होंने कहा ठाकुर साहब। मैंने प्रत्यक्ष बड़ा चमत्कार देखा है तभी से मैं तुलसी की माला रखता हूं। एक बार वह सज्जन पैदल ही किसी दूसरे गांव जा रहे थे। रास्ते में एक जंगल था। उस जंगल में एक पेड़ के नीचे उन्हें बड़े आकार के दो मनुष्य मिले। वह डर गये। परन्तु उन्होंने उस सज्जन को विश्वास दिलाया कि 'डरने की कोई बात नहीं है' हम यमराज के दूत हैं। अभी एक गाड़ीबान गाड़ी लेकर इधर आएगा। उसके बैलों की जोती टूट जाएगी। हम बैल रूप काल बनकर उसे यमलोक ले जाएंगे'। यह सुनकर वह वहीं ठहर गया। थोड़ी देर बाद वैसा ही हुआ। गाड़ी वाला गाड़ी लेकर आया और जोती टूट गई। गाड़ीबान सुधारने के लिए उतरा, उसी समय बैल ने उसके पेट में इतने जोर से सींग मारा कि वह एक पेड़ों के झुरमुट में जा गिरा और उसके प्राण छूट गए।

तब यम के दूत निराश होकर उस व्यक्ति से बोले 'हम खाली हाथ जा रहे हैं। इसे भगवान के दूत ले गए। क्योंकि उस झुरमुट में तुलसी के पौधे थे। इसके शरीर ने इन पौधों का स्पर्श कर लिया हैं'।

तभी से गले में तुलसी की माला पहनने का प्रचलन हो गया है।

वैज्ञानिक आधार

तुलसी से अनेक प्रकार की दवाईयां बनती हैं। होमियोपैथिक † में एक भाग पौधे में दो भाग एलकोहल मिलाकर मदर टिंक्चर बनाते हैं। जिसकी स्मरण शक्ति क्षीण हो गई हो, रोगी नित्य के कार्य भी याद न रख सके उसे तुलसी की दवा बना कर देते है।

आयुर्वेद † के मतानुसार ओसिमम (तुलसी) कीटाणु नाशक दवा है इसका पत्ता सब तरह के दूषित गन्धों को नाश करता है तथा सड़न को दूर करता है। मृत व्यक्ति के शव के साथ तुलसी का गाछ श्मशान घाट पर ले जाते हैं क्योंकि इसमें कीटाणु नष्ट करने की शक्ति रहने के कारण शव वाहक को छूतदार बीमारी होने का डर नहीं रहता। सर्प काटने पर इसके पत्ते के रस को पिलने से विष नष्ट हो जाता है। इससे

---

† डा० श्यामसहाय भार्गव, होमियो मेटेरिया मेडिका, १९६० पृ० १११

† डा० श्यामसहाय भार्गव, होमियो मेटेरिया मेडिका पृ० ११४

मलेरिया विष भी नष्ट हो जाता है। इसका रस पीने से कुष्ट रोगी की तकलीफ कम होती है।

निष्कर्ष

पंचभीष्म व्रत कथाएं महत्वपूर्ण हैं । इनमें व्रत महात्म्य के बारे में बताया गया है, तुलसी पूजन की महिमा बताई है। हम व्रत करते हैं हमारा मन उस समय शुद्ध रहता है। हमारी वृति सात्विक हो जाती है। तुलसी क्योंकि कीटाणु नाशक है वायुमण्डल को शुद्ध बनाती है। शुद्ध वायु हमारे अन्दर जाएगी तो कई रोग ठीक हो जाएंगे।

●

द्वारा पाल दवा-खाना, नगरोटा बगवां
जिला कांगड़ा (हि० प्र०)

हिमाचल प्रदेश में सूर्य पूजा

—रमेश चन्द्रा

मानव ने जब से धरती पर जन्म लिया है तब से मानव और सूर्य का अटूट सम्बन्ध जुड़ा हुआ है। कोई भी समय ऐसा नहीं रहा होगा जब सूर्य की महता को अनुभव नहीं किया गया हो। मानव जीवन का स्रोत, प्रकाश और शक्ति का प्रतीक सूर्य विश्व की अनेक प्राचीन संस्कृतियों का आराध्य देवता बना रहा है। साहित्य और अभिलेखों के आधार पर सूर्य जीवन का स्त्रोत कहा गया है। इसी कारण सूर्य देवता का स्थान आज तक समाज में दीख पड़ता है। सूर्य को प्रकृति देवता और स्वास्थ्य प्रदान करने वाला माना गया है।

सूर्य समस्त रोगानां हर्ता विश्व प्रकाशकः

भारतवर्ष में सूर्य उपासना के मूल वैदिक काल से ही मिलने लगते हैं। हिमाचल प्रदेश में सूर्य पूजा के अनेक प्रमाण मिलते हैं, जिनके आधार पर हम यह कह सकते हैं कि यहां सूर्य की उपासना को भी उतना ही स्थान दिया गया है जितना कि अन्य देवी देवताओं की उपासना को। हिमाचल प्रदेश में सूर्य की कई पाषाण और कास्य प्रतिमाओं का निमार्ण किया गया। जहां तक सूर्य मन्दिरों का सम्बन्ध है केवल नीरथ 'जिला शिमला' ८वीं ९वीं शताब्दी के समय के मन्दिर का हमें ज्ञान है, परन्तु सूर्य की कुछ पाषाण प्रतिमाएं इतनी विशाल भी मिली हैं जिन्हे देखकर यह लगता है कि यह प्रतिमाएं अवश्य किसी बड़े मन्दिर में मुख्य देवता के रूप में पूजी जाती रहीं होंगी। इस लेख में सर्वप्रथम बजोरा जिला कुल्लू से प्राप्त सूर्य की पाषाण प्रतिमा का उल्लेख किया जा रहा है जो छठी शताब्दी की है। यह प्रतिमा इस समय राज्य संग्रहालय शिमला में प्रदर्शित की गई हैं। इस मूर्ति का लम्बा कोट, कमर में मेखल, पांव में जूते, मूर्ति में पूरे नहीं दिखाई देते, सिर पर मुकुट और दोनों हाथ में फुल लिए दिखाया गया है। कुछ विद्वानों का मत है कि इस प्रतिमा पर कुषाण कालीन प्रभाव है, विशेष कर इसकी वेश भूषा लम्बा कोट, पांव में जूते, कमर में खड़ग इत्यादि कुषाण सम्राटों की वेश-भूषा से मिलती है। कई विद्वान तो यहां तक मानते हैं कि भारत में सूर्य पूजा कहीं बाहर से आई है। ईरान के अग्नि पूजकों और सूर्य उपासको के आपसी संघर्ष के कारण ईरान और सूर्य उपासकों जिन्हे 'मग' कहा जाता था ईरान छोड़ कर भारत में बस गये और उन्होंने ही भारत में सर्वप्रथम सूर्य पूजा का विधान बताया और सूर्य मन्दिर की स्थापना की। बजोरा जिला कुल्लू से प्राप्त सूर्य की प्रतिमा में जो वेश-भूषा है उसमें ईरानी व कुषाण कालीन प्रभाव हैं ऐसी वेश-भूषा में विदेशी प्रभाव के सम्बन्ध में विद्वान यह तर्क देते हैं :

१. सूर्य प्रतिमा मेखल (कमर की पट्टी) पहने हुए है, जिसे साधारणतया अवियंग

कहते हैं। ईरान के मग पुजारी भी कमर में मेखल (पट्टी) बान्धते थे जिसे अबियोधान कहा जाता था।

२. इस प्रकार की सूर्य प्रतिमाओं में जो वेश-भूषा मिलती है, विद्वानों द्वारा उसे 'उदीच्यवेश' का नाम दिया गया है यह कुषाण राजाओं की वेश-भूषा से मिलती जुलती है।

३. कुछ सूर्य प्रतिमाओं में पैरों को ढकने के लिए बूट के आकार की कोई वस्तु पाई जाती है जिसे विदेशी लक्षण माना गया है। बजौरा से प्राप्त सूर्य मूर्ति के पैरों में भी ऐसा प्रतीत होता है जैसे पैरों में बूट पहने हुए हो।

परन्तु हम उपर्युक्त तथ्यों से सहमत नहीं हैं कि भारत में सूर्य पूजा का आरम्भ विदेशियों द्वारा किया गया और कुछ और प्रतिमाओं पर ईरानी प्रभाव है। निम्नलिखित तथ्य यह सिद्ध करते हैं कि भारत में सूर्य पूजा का विधान विदेशियों ने नहीं दिया और न ही इन मूर्तियों पर पर कुषाण कालीन या ईरानी प्रभाव है।

१. कुछ विद्वान सूर्य पूजा का भारत में आरम्भ ईरान के मग ब्राह्मणों द्वारा मानते हैं, मगों का भारत आगमन ६०० ई० पूर्व माना गया है जबकि भारत में सूर्य पूजा के मूल या प्रचलन वैदिक काल से माना गया है। वैदिक सभ्यता का काल १५०० ई० पूर्व से ८०० ई० पूर्व है अतः हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि यद्यपि मग पुजारी ईरान से भारत में आये भी होंगे तब भी भारत में सूर्य का प्रचलन मगों से पूर्व का है। जहां तक बजौरा से प्राप्त सूर्य की पाषाण प्रतिमा या इस प्रकार की अन्य उत्तर भारतीय प्रतिमाओं पर कुषाण कालीन या ईरानी वेश–भूषा का प्रश्न है निम्न तथ्य इस तर्क को झुठलाने में सहायक सिद्ध होते हैं।

२. इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि भारत में निर्मित सूर्य की कुछ मूर्तियों को मेखल 'कमर की पट्टी' पहने हुए दिखाया गया है, परन्तु हमारे पुराणों और दूसरे धर्मशास्त्रों में भी मेखल का उल्लेख आता है कि सूर्य प्रतिमाओं में मेखल होनी चाहिये। बृहत संहिता, भविष्य पुराण और विष्णु धर्मोत्तर पुराण में भी मेखल के लिए अबियंग नाम आया है, और इतिहासकारों ने इसे अवियंग मान कर पर्शियन शब्द अवियोधान से जोड़ा है।

बजौरा से प्राप्त पाषाण प्रतिमा पर सो यह अवियांग (मेखल) दृष्टिगोचर होती है। इस मेखल या अबियांग के सम्बन्ध में एक बात उल्लेखनीय है कि अवियांग कुषाणकाल में बनी किसी भी प्रतिमा पर नहीं पाई जाती, यह केवल उन्हीं सूर्य प्रतिमाओं पर पाई जाती है जो गुप्तकाल और उत्तर गुप्त काल में निर्मित की गई। अबियंग (कमर की पट्टी) कुषाणकाल में बनी किसी भी प्रतिमा पर नहीं पाई जाती है।

सूर्य प्रतिमाओं की कमर में अवियंग (पट्टी) को विदेशी प्रभाव माना गया है, परन्तु दक्षिणी भारत में निर्मित सूर्य प्रतिमाओं से भी हम अवियांग (कमर की पट्टी) पाते हैं, साधारणतया यह माना जाता है कि दक्षिणी भारत पर ईरानी कला का प्रभाव नहीं पड़ा। और सूर्य की दो

भुजाओं वाली प्रतिमाएं जिनके हाथों में फूल दर्शाया गया होता है निःसन्देह भारतीय उत्पति है, अतः सूर्य प्रतिमाओं की कमर में अवियंग का मिलना विदेशी प्रभाव नहीं है।

३. कुछ विद्वानों का कहना है कि सूर्य प्रतिमा पर जो वेश-भूषा विशेष कर लम्बा कोट पाया जाता है। जो बजौरा की प्रतिमा पर भी है विदेशी प्रभाव लिये हुए है। उनके अनुसार ऐसी वेश-भूषा कुषाण राजाओं की वेश-भूषा से मिलती है जिसे 'उदीयच्यवेश' कहा गया है। परन्तु निम्नलिखित तथ्य सूर्य प्रतिमा पर विदेशी प्रभाव की धारणा को गलत सिद्ध करते हैं।

उदीयच्यवेश के सम्बन्ध में सतपथ ब्राह्मण में उल्लेख मिलता है कि यह वेश-भूषा उत्तर भारतीय लोगों की वेश-भूषा थी। उत्तरी भारत के ब्राह्मणों को उदीच्यास कहा गया है। मत्स्य पुराण में भी कहा गया है कि सूर्य प्रतिमाएं 'चौलक' नामक वस्त्र से ढकी हुई होनी चाहिये। चौलक की पहचान 'चोला' या लम्बे कोट से की जा सकती है। ऋग्वेद में सूर्य प्रतिमाओं की वेश-भूषा 'लम्बा कोट' के लिए 'कवच' का नाम आया है। कवच शब्द योद्धाओं की वेश-भूषा के लिये प्रयोग किया जाता है। यानी सूर्य देव योद्धा का रूप धारण करके अन्धेरा रूपी दैत्य का नाश करता है। अतः इस तरह की पोशाक (लम्बा कोट) जो बजौरा से मिली सूर्य प्रतिमा पर पाया जाता है, कुषाण कालीन प्रभावित नहीं कही जा सकती। इसकी उत्पत्ति भारतीय ही है।

४. बजौरा (कुल्लू) से मिली प्रतिमा के पांव को स्पष्ट नहीं दिखाया गया है, ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे लम्बे बूट पहने हों। इस प्रकार की और भी कई कांस्य और पाषाण प्रतिमाएँ मिलती है। कुछ विद्वानों ने इसे भी विदेशी लक्षण माना है। परन्तु गुप्त और उतर गुप्त युग के कलाविदों की धारणा थी कि सूर्य के पैर देखने से मनुष्य रोगी हो जाता है, इसी कारण उत्तरी भारत में सूर्य प्रतिमा के पैर के भाग को या तो उत्कीर्ण ही नही किया गया या अधूरा छोड़ दिया गया या फिर पैर के स्थान पर लम्बे बूट का आकार उत्कीर्ण कर दिया गया। बजौरा की पाषाण प्रतिमा जिसका इस लेख में छाया चित्र दिया गया है के पांव के निर्माण को अधुरा छोड़ दिया गया है परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि प्रतिमा ने लम्बे बूट पहने हो। दक्षिण भारत की प्रतिमाएं उत्तरी भारत से तनिक भिन्न हैं, सूर्य प्रतिमाओं के पांव की उंगलियां बनी हैं, जिन पर कोई आवरण नहीं है। पुराणों में कहा गया है कि विश्वकर्मा (मूर्तिकारों के गुरु) ने सूर्य प्रतिमा केवल घुटनों तक बनाई थी और घुटनों से नीचे का भाग पूर्ण रूप से बनाये बिना ही छोड़ दिया था। पदम पुराण और ब्रह्म पुराण में लिखा है कि सूर्य के पैर ढके हुए होने चाहिये। कुछ मूर्तिविवरण सम्बन्धी पुस्तकें जैसे विश्वकर्मा शिल्प, विश्वकर्मा अवतार शास्त्र और रूप मण्डल भी सूर्य प्रतिमा के पांव के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहते। अतः उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर हम कह सकते हैं कि भारतीय सूर्य प्रतिमाओं पर कोई भी बिदेशी प्रभाव नही रहा है। यदि प्रभाव रहा है तो हमारे अपने धर्मशास्त्रों का। हमारे शास्त्र वेद पुराण और हमारा धर्म कलाकारों की प्रेरणा का स्त्रोत बना। बजौरा (कुल्लू) से प्राप्त सूर्य की पाषाण प्रतिमा पर कुषाण कालीन राजाओं की वेषभूषा का या कला का प्रभाव नहीं हैं यह प्रतिमा सिर पर सुसज्जित मुकुट धारण किए हुए हैं, दोनों हाथों में फूल है। प्राचीन काल से ही सूर्य का फूल से घनिष्ट सम्बन्ध रहा है।

सूय की मनुष्याकार प्रतिमा में दो कमल सूर्य का एक प्रमुख प्रतीक है। प्रतिमा के गले में पहना हुआ मालाओं वाला हार गुप्तकालीन प्रतिमाओं की विशेष पहचान कराता है। कुषाण कालीन कई प्रतिमाओं में सूर्य के दाहिने हाथ में कमल की कली होती है और बायें हाथ में छुरी। परन्तु कुषाणकाल की छुरी गुप्तकाल में तलवार में बदल जाती है और हाथ से छूट कर कमर में लटकने लगती है। बजौरा की सूर्य प्रतिमा में भी बाई ओर तलवार दिखाई गई है। अतः प्रतिमा में गुप्त कालीन सभी विशेषताएं दीख पड़ती है, जो हिमाचल प्रदेश में सूर्य देवता की उपासना की धारणा को सदृढ़ करती है।

सूर्य प्रतिमाओं के अतिरिक्त कुछ चिन्ह जैसे आहत मुद्राएं (पांच मार्कंड सिक्के) स्वास्तिक चिन्ह, पहिया और कमल भी सूर्य पूजा की पुष्टि करते हैं या सूर्य पूजा के प्रतीक माने जाते हैं। आहत मुद्राएँ इस देश की प्राचीन मुद्राएं मानी जाती हैं, इन पर अनिवार्य रूप से चक्र के दर्शन होते हैं। जिन्हें सूर्य चिन्ह माना गया हैं। प्राचीन भारत के शासक धर्मपरायण थे और जिस धर्म व देवता के वो उपासक थे, उस देवता के अपने सिक्कों पर चिन्ह अंकित किया करते थे। ताकि अपने धार्मिक विश्वास को प्रदंशित कर सकें और जो जनता को भी मान्य हो। अर्की जिला सोलन (हि० प्र०) में मिले चांदी के आहत सिक्के जो दुसरी शताब्दी ई० पूर्व के है पर चक्र अंकित हैं। चक्रके चारों ओर बाहिर की ओर फैली हुई किरणें दिखाई गई हैं। कई सिक्कों पर बारह किरणें हैं कईयों पर इससे कम। सूर्य की इन बारह किरणों को वर्ष के बारह महीनों से लिया गया है। अतः हिमाचल प्रदेश में आहत मुद्राओं (पांच मार्कंड सिक्कों) का मिलना हिमाचल प्रदेश में सूर्य पूजा के प्रचलन पर प्रकाश डालता है

स्वास्तिक के चिन्ह को भी सूर्य का प्रतीक माना गया है। ई० वी० हवेल के अनुसार स्वास्तिक का चिन्ह, पृथ्वी के गिर्द सूर्य की गति को प्रकट करता है, और संसार की उत्पति व सरक्षण का धोतक है। स्वास्तिक चिन्ह से जो दिशायें बनती है, वो सूर्य की विभिन्न स्थिति से ली गई है जैसे मध्य रात्रि के समय सूर्य की स्थिति, सूर्य का निकलना, दोपहर और सूर्य का अस्त होना। और सूर्य की यह गति ही संसार को जीवन और समृद्धि प्रदान करती है इसी कारण स्वास्तिक का चिह्न अंत में, मनुष्य जीवन की समृद्धि का धोतक माना गया है। जिला मण्डी 'हि०प्र०' में चक्कर के स्थान पर कुनिद राजाओं के सिक्के मिले हैं जिन्हें राज्य संग्रहालय शिमला के लिए अर्जित किया गया है। इन सिक्कों पर स्वास्तिक का निशान पाया जाता है। यह सिक्के पहली-दूसरी शताब्दी के हैं। कुनिष्द त्रिगर्त, कुलूत तथा औदुम्बरों की तरह जनपद थे। प्रचीनकाल में इनका निवास और कर्म क्षेत्र सतलुज नदी से लेकर पूर्व में यमुना नदी के पार गढ़वाल और कुमायूं के क्षेत्रों तक विस्तृत था। महाभारत, पुराण और बृहतसंहिता में इनका उल्लेख है। यहां इन्हें कुनिन्द और कुलिन्द कहा गया है। विष्णु पुराण में इन्हें 'कुलिन्दोपत्यका' (पर्वतीय घाटियों में रहने वाले लोग) कहा गया है। अतः हिमाचल प्रदेश में इनका निवास व गणराज्य निश्चित रूप से रहा होगा। जिला मण्डी में मिले कुनिन्द राजाओं के सिक्कों पर स्वास्तिक के चिन्ह का पाया जाना इस क्षेत्र में सूर्य पूजा के प्रचलन को सिद्ध करता है। इसके अतिरिक्त कुनिन्द राजाओं के सिक्के सोलन, बिलासपुर, ज्वालामुखी और हमीरपुर में भी मिले हैं। सूर्य का तीसरा प्रतीक चक्र माना गया है। उत्तरवैदिक काल

से ही चक्र सूर्य चिन्ह के रूप में माना गया है, क्योंकि चक्र सूर्य आकार और गति का द्योतक है। ऋग्वेद में चक्र को सूर्य के नाम से पुकारा गया है। चक्र का चिन्ह हमें कुलूत सिक्कों पर भी मिलता है। कुलूत जिला कुल्लू का ही पुराना नाम है। कुलूत कुनिन्द और औदुम्बरों की तरह ही जनपद थे। महाभारत, पुराण, वाणभट्ट द्वारा लिखित कादम्बरी और चम्बा के अभिलेखकों में उनका व उनके शासन तथा राज्य का वर्णन है। कुलूत की धरती ऊपरी व्यास घाटी मानी गई है, जो आज कुल्लू के नाम से जानी जाती है। कुल्लू शासकों ने भी अपने सिक्के जारी किये, जिन पर चक्र का चिन्ह मिलता है। कुलूत सिक्के प्रथम या द्वितीय शताब्दी के माने गये हैं। सिक्कों पर चक्र का चिन्ह सूर्य का प्रतीक है जो सूर्य पूजा के प्रचलन पर प्रकाश डालता है।

इसके अतिरिक्त लाहौल (हि० प्र) में स्थित चन्द्र भागा नदी के तट पर स्थित मर्कुला देवी के मन्दिर से भी सूर्य की प्रतिमा मिली है। चन्द्र भागा घाटी में यद्यपि बुद्ध धर्म का प्रभुत्व रहा है, परन्तु साथ ही वहां हिन्दु धर्म का भी अस्तित्व रहा है।। जिला चम्बा में गूं के स्थान पर सूर्य की पाषाण प्रतिमा जिसमें सूर्य को रथ पर बैठे दिखाया गया है और रथ को सात घोड़े खींच रहे है। ई० पू० प्राचीन सूर्य प्रतिमाओं में चार घोड़े दीख पड़ते हैं। किन्तु गुप्त युग में सात घोड़ों की कल्पना सूर्य प्रतिमा में आरोपित की गई। चम्बा और भरमौर के मध्य गूं नामक स्थान पर यह पाषाण प्रतिमा मिली है। जिला चम्बा की चुराह तहसील में देवी-री कोठी नामक स्थान पर मिले कुछ (फाऊं टेन स्लैब) पर सूर्य की आकृतियां मिलती हैं। भरमौर जिला चम्बा में लक्षणा देवी मन्दिर के अग्रिम भाग के मध्य में जो प्रदेश द्वार है उस पर बहुत सुन्दर काष्ठकारी की गई है। मेहराब में जो बैठी हुई देवी बनाई गई है। जनरल कनिंघम ने उसे 'काली' माना है। बारह भुजाएं जिन्हें वर्ष के बारह महीनों से लिया जा सकता है कुछ विद्वानों ने इसे सूर्य माना है।

शक्ति देवी मंदिर छतराड़ी जिला चम्बा के प्रदेश द्वारा के ऊपर तेरह आकृतियां पैर पर पैर रखे हुए है दिखाई गई हैं। जो नौ नवग्रह का प्रतीक हैं। नवग्रह में सूर्य के स्थान का उल्लेख अग्नि पुराण के अध्याय १६४ में मिलता है। उनके नाम हैं :

१. सूर्य २. सोम (चन्द्रमा) ३. भौम (मंगल) ४. बुद्ध ५. गुरू (बृहस्पति)
६. शुक्र ७. शनि ८. राहू ९. केतू

कला में सभी आकृतियां एक साथ खुदी हुई है। प्रथम सात ग्रहों के नाम पर सात वार दिन स्थिर किये गये जो आज तक प्रचलित हैं। मध्ययुगी स्थापत्य कला में नवग्रह की आकृति मन्दिर के मुख्य द्वार के चौखट पर खोदी जाने लगी। अतः हम देखते हैं कि देवो देवताओं के साथ हिमाचल के इन स्थानों पर सूर्य पूजा के प्रमाण हमें मिलते हैं।

निर्मण्ड जिला कुल्लू में भी एक सूर्य की पाषाण प्रतिमा विद्यमान है जिसकी वेशभूषा बजौरा से प्राप्त सूर्य की पाषाण प्रतिमा से मिलती है। राज्य संग्रहालय शिमला में आठवीं शताब्दी की सूर्य प्रतिमा जो मसरुर जिला कांगड़ा से, एक पाषाण प्रतिमा जिला सिरमौर से तथा एक कांस्य की सूर्य प्रतिमा सराहन जिला शिमला से प्राप्त की गई है और संग्रहालय में विद्यमान है। एक पाषाण प्रतिमा ९ वीं १० वीं शताब्दी की भूरी सिंह संग्रहालय चम्बा के संग्रह में भी विद्यमान है। जिला

मंडी के देवमन्दिरों में सात घोड़ों वाले रथ पर आसीन सूर्य नारायण की प्रतिमाएं आज भी मिलती है। गुप्त काल या उसके बाद के समय सूर्य उपासना का प्रचलन कुछ अधिक हो गया था। क्योंकि इस काल के बने मन्दिरों में कहीं कहींसूर्य प्रतिमाएं मिलती हैं। उदाहरणार्थ, बैजनाथ मंदिर की सूर्य प्रतिमा सम्भवत: इसी काल की जान पड़ती है. बलग जिला शिमला में भी कुछ सूर्य की पाषाण प्रतिमाएं पाई गई हैं सिद्धनाथ के मन्दिर जो बैजनाथ में है भी सूर्य प्रतिमा हैं।

भूरी सिंह संग्रहालय चम्बा, की पाण्डुलिपि जिसका नाम जालन्धर पीठ दीपिका है में 'सूर्य कुण्ड' का उल्लेख है, सम्भवत: यह कालीपीठ की समीपस्थ है। इसका उल्लेखपृष्ठ ३८ पर आया है। कुण्ड को तालाब कहते है सूर्य कुण्ड भी सूर्य पूजा के प्रतिक माने गये हैं। उक्तपाण्डु लिपि में जो काली पीठ नाम आया है यह स्थान सम्भवत: कांगड़ा में किसी स्थान पर रहा होगा। सूर्य कुण्ड या सरोवर लोगों के तीर्थ स्थान थे। लोगों की अब तक यह धारणा है कि इनमें स्नान करने से पाप धुल जाते हैं। प्राचीन भारतीय समाज में भी यह धारणा थी कि यदि किसी स्त्री को बच्चा न होता हो या पुत्र रत्न की प्राप्ति चाहती हो तो वो सूर्य कुण्ड में स्नान करे, और अपना बांझपन समाप्त करने के लिए सूर्य भगवान से प्रार्थना करे। प्राचीन रीति रिवाज और धार्मिक मान्यताएं आज तक हमारे समाजिक जीवन में विद्यमान हैं।

श्री विश्व चन्द्र ओहरी, संग्रहालयाध्यक्ष, हिमाचल प्रदेश राज्य संग्रहालय के प्रयत्नों से सूर्य की एक और महत्वपूर्ण पाषाण प्रतिमा प्रकाश में आई है। यह प्रतिमा जिला ऊना (डोंगी) बंगाणा के स्थान पर मिली है जो १० वीं शताब्दी की है और ९८.५ सैंटीमीटर लम्बी और ७१ सैंटीमीटर चौड़ी है। हिमाचल प्रदेश में सूर्य का एक मंदिर नीरथ (जिला शिमला) नामक स्थान पर स्थित है और ८वीं-९वीं शताब्दी का है। यह मंदिर वास्तुकला की दृष्टि से प्रतिहार काल में बनाया लगता है। राज्य संग्रहालय शिमला में बजौरा से प्राप्त सूर्य की विशाल प्रतिमा भी यह आभास कराती है कि यह अवश्य किसी सूर्य मन्दिर में मुख्य देवता के रूप में पूजी जाती रही होगी उपर्युक्त सभी प्रमाण यह सिद्ध करते हैं कि हिमाचल प्रदेश में जहां अन्य देवी देवताओं की पूजा होती थी वहां सूर्य की पूजा का भी उतना-उनता ही महत्व पूर्ण स्थान था और आज तक है।

●

तकनीकी सहायक, हिमाचल राज्य संग्रहालय, शिमला

हिमाचल की नदियां---उनका सांस्कृतिक
और
एतिहासिक महत्व

—प्रो० चन्द्रवर्कर

ऋग्वेद के नदी सूक्त में जिन दस नदियों का वर्णन किया गया है, उनमें से पांच हिमाचल से सम्बन्ध रखती है। वह हैं असीकनी यानी चनाब, पुरूषनी यानी रावी, अर्जिकिया यानी ब्यास, सुषोमा यानी सुआं और सतुद्री यानी सतलुज, चनाब, रावी, ब्यास और सुआं हिमाचल में से निकलती हैं। सतुलज, शिपकी जोत से भाखड़ा तक सैंकड़ों मील इसमें से होकर बहती है। यमुना कुछ दूरी तक इसकी उत्तरप्रदेश के साथ सीमा बनाती है। इनके अतिरिक्त, इन नदियों की सैंकड़ों छोटी बड़ी सहायक नदियां, नाले और खड्ड हैं जिनका स्थानिक इतिहास और संस्कृति में खास महत्व है।

हिमाचल की नदियां हिमालय की पुत्रियां हैं और इस कारण पवित्र हैं और पूजा की पात्र हैं। इनका तो दर्शन ही कल्याणकारी है इनके उदगम और संगम स्थानों को पवित्र माना गया हैं। रोहतांग जोत जहां से ब्यास नदी निकलती है को ब्यास ऋषी कहा गया है। हर साल सैंकड़ों यात्री वहां जाते हैं। लाहौल का सबसे प्रसिद्ध गोंपा गुरूघंटाल चन्द्रा और भागा के संगम के सामने की पहाड़ी पर बना है। कुल्लू में पार्वती और ब्यास के संगम भूई के ऊपर सीधी खड़ी चट्टान पर बिजली महादेव का मंदिर है। मण्डी शहर ब्यास और सुकेती के संगम पर बसा है। हाट कोटी का दुर्गा मंदिर पब्बर और विशबालटी के संगम पर है।

इनके किनारों पर जहां सागरिक महत्व की ऊंची चोटियां मिली वहां किले बने, जहां दूसरे ठीक स्थान मिले वहां राजधानियां बनीं। मेलों और तहवारों का आयाजन हुआ।

इनके साथ कई हृदय विदारक कहानियां जुड़ी हुई हैं। चम्बयाली राणी की, चड़ी राणी की, कुल्लू की राणी की जिनको नदियों के किनारे इस लिये जीवित दफना दिया गया कि वहां से पानी कुल्हों में चढ़ कर लोगों की प्यास बुझाए, कांगड़ा में गज खड्ड में ब्याह के बाद ससुराल को जाते हुए रली ने इसलिये छलांग लगाकर आत्महत्या कर ली कि उसे एक बच्चे के साथ ब्याह दिया गया था। इस वाक्ये को स्त्रियां और

लड़कियां हर पहली बैसाख को रलियों के मेले के रूप में मनाती हैं। जब वह रली, उसके पति और भाई की मिट्टी की मूर्तियां नदियों में जाकर बहा देती हैं।

भीतरी सराज में बठाउ के स्थान पर एक लड़की तीर्थण नदी में इसलिये समा गई कि उसके पिता ने अपना दिया हुआ बचन पूरा करने के लिये उसकी शादी एक निचली जाति के आदमी से कर दी। अब वह गड़ा गोशैणी देवी के नाम से पूजी जाती है।

रोहड़ के पास शिकारी खड्ड में गंगटोली के स्थान पर एक गडरिये की पत्नी ने अपने पति की बांसुरी पानी में बह कर आती देखकर यह समझकर कि वह मर गया है आत्म हत्या कर ली हालांकि उसके पति ने अपनी बांसुरी और एक कमल का फूल खड्ड में इसलिये छोड़े थे कि उसकी पत्नी उनको पहचान कर प्रसन्न होगी।

यह नदियां राज्यों की सीमाएं बनाती रही हैं। छोटी छोटी धारे, खडलू, और नालू रणढूओं यानी राणाओं के इलाकों और ठाकुराइयों यानी ठाकुरों के इलाकों की और बड़ी धारें, खड्डें और नदियां रियास्तों की सीमाएं निश्चित करती रही हैं। सतलुज, कुल्लू और बशहर की, भज्जी और सुकेत की और बिलासपुर और कांगड़े की परम्परागत सीमा रही है। सतलुज ही गोरखा और कांगड़ा व सिक्ख राज की सन् १८०३ से सन् १८१५ तक और फिर अंग्रजी राज और सिक्ख राज की १८१५ से सन् १८४६ तक सीमा रही। ब्यास काफी लम्बाई तक कांगड़ा, जस्वां, गुलेर, डाडा, नूरपुर और दातारपुर रियासतों का सीमांकन करती रही।

राजनैतिक सीमाओं के अतिरिक्त नदियां, किसी हद तक, रस्मों और रिवाजों की सीमां भी बनाती हैं। सरमौर में गिरी नदी के अवार और पार के इलाकों में कुछ रस्मों और रिवाजों की भिन्नता इसका एक उदाहरण है।

चनाब, जिसे हिमाचल में चन्द्रा भागा कहते हैं, दो नदियों चन्द्रा और भागा जो लाहौल में ४८९१ मीटर ऊंचे बारालाचा जोत के दोनों किनारों से निकलती है, के मिलन से बनी है। कहते हैं, तन्दी के स्थान पर जहां यह मिलती हैं, पांडवों ने तंदी राक्षस को हराया था। चम्बा लाहुल में इसी की घाटी में लालितादित्य के काल का त्रिलोकनाथ यानी बोद्धिसत्व अवलोकितेश्वर का मंदिर है।

महाभारत के अनुशासन पर्व के अनुसार चन्द्रभागा में सात दिन स्नान करने से मनुष्य मुनि के समान निर्मल हो जाता है। विष्णुधर्मसूत्र इसे श्राद्ध करने के योग्य मानता है। ऋग्वेद में लिखा है कि इस नदी में बीमारियों को ठीक करने वाली दवाईयां पाई जाती हैं।

रावी नदी जिला कांगड़ा में बड़ा भंगाल से निकलती है। यह मध्य हिमालय

श्रौर बाहिरी हिमाचल के बीच से होती हुई हिमालय के अन्दर २०० किलोमीटर की लम्बाई में बहती है। चम्बा शहर जिसे सन् ६३० में राजा साहिल वर्मा ने चम्बा राज्य की राजधानी बनाया था श्रौर जिसमें दसवीं शताब्दी की परिहार शैली के श्रौर बाद के कई प्रसिद्ध शिखर मंदिर खड़े हैं, इसके दायें किनारे पर बसा है। भरमौर जो सातवीं शताब्दी से लेकर शुरू दसवीं शताब्दी तक चम्बा राज्य की राजधानी रहा, रावी की सहायक नदी बुढिल पर बसा हुश्रा है। भरमौर में उत्तरगुप्त काल का लकड़ी पर की गई श्राकर्षक नक्काशी वाला श्रौर बड़ी उत्तम बनावट की पीतल की देवी मूर्ति वाला लक्षणा देवी मंदिर है। यहीं के गणेश श्रौर मणी महेश मंदिरों की गणेश श्रौर नन्दी की मूर्तियां भी कला के बड़े श्रच्छे नमूने हैं। पवित्र भरमौर कैलाश श्रौर मणीमहेश झील का पानी हरसर क स्थान पर इसमें श्राकर मिलता है। खड़ामुख में जहां बुढिल रावी नदी में मिलती है, राजा मेरूवर्मा के पिता ने तपस्या की थी।

दशराजन युद्ध जिसका वर्णन, ऋग्वेद में कई बार श्राया है। रावी नदी के किनारे पर लड़ा गया था। श्रथर्ववेद भी इसके किनारे पर लिखा गया था, नीलमत पुराण में लिखा है कि यह नदी सब पापों को धो देती है। इसका वर्णन मत्स्य, वायु श्रौर वामन पुराणों में भी श्राता है।

बहुत सी पुरानी राजधानियां ब्यास के किनारे पर बसी हुई हैं। कुल्लू की चारों राजधानियां इसी के किनारों पर रही हैं वह है जगतसुख के पास नास्त जिसे राजा भंगमणि पाल ने कुल्लू की पहली राजधानी बनाया, नगर जहां राजा विसुद्धपाल श्रपनी राजधानी ले गया, मकड़सा जिसे बहादुर सिंह ने श्रपनाया श्रौर सुलतानपुर यानी कुल्लू जहां सन १६६० में जगत सिंह ने श्रपनी राजधानी तबदील की। पुराना मण्डी शहर जिसे राजा कल्याण सैन ने मण्डी राज्य की राजधानी बनाया श्रौर श्राजकल का मण्डी शहर जिसे राजा श्रजबर सैन ने सन १५०० में बसाया, भी इसी के किनारों पर है।

बीजापुर जहां कांगड़ा के प्रसिद्ध राजा संसार चन्द का जन्म हुश्रा श्रौर श्रालम पुर, सुजानपुर टीहरा श्रौर नादौन, जहां राजा संसार चन्द ने श्रपने दरबारी चित्रकारों को कांगड़ा कलम की बेहतरीन तस्वीरें बनाने की प्रेरणा दी, ब्यास के किनारों पर श्राबाद हैं। नादौन में ही गुरूगोबिन्द सिंह श्रौर कुछ पहाड़ी राजाश्रों ने मिलकर मुगल सैनानी श्रतीफ-खां को हराया था।

कहते हैं, कि सन ३२५ पूर्व मसीह में सिकन्दर की सेनाएं नूरपुर तहसील में श्रन्दौरा के पास ब्यास के किनारे काठगढ़ से वापिस गई थीं।

मनाली जो मनु जी से सम्बन्धित कही जाती है श्रौर जहां हिड़म्बा देवी का प्रसिद्ध मंदिर है, वशिष्ठ के गरम पानी के स्रोत जहां वशिष्ठ ऋषि ने निवास किया था, ल्काना

जहां कपिल मुनी ने तपस्या की थी और बजौरा जहां दसवीं शताब्दी का शिखर मंदिर है, इसी नदी पर है।

ऋग्वेद में लिखा है कि उषा देवी का रथ व्यास के किनारे टूटा पड़ा है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार मनु की किश्ती उत्तरकाशी की ओर जाने के लिये सिन्धु नदी से ब्यास नदी में दाखिल हुई। वशिष्ठ ऋषि जब जीवन से तंग आ गये तो उन्होंने अपने आप को समाप्त करने के लिये अपने शरीर को रस्सी में बान्धा और ब्यास में कूद गये। परन्तु इस नदी ने उनके बन्धनों को खोल दिया और उन्हें नया जीवन दान दिया। इससे इसका विपाशा नाम पड़ा।

उबलते पानी के स्रोतों वाला मनीकर्ण तीर्थ और उसके ऊपर खीर गंगा तीर्थ ब्यास की सहायक नदी पार्वती पर बसे हैं। शिव और पार्वती इस नदी की घाटी में क्रीड़ा करते थे। भूंतर जिसके निकट पार्वती ब्यास से मिलती है, वहां शिव ने शवर के भेस में अर्जुन से युद्ध किया था।

बैजनाथ जहां तेरहवीं शताब्दी का शिव वैद्यनाथ का शिखर मन्दिर है बिन्वा खड्ड पर है। जो त्रिवेणी संगम पर ब्यास में मिल जाती है। ब्यास की सहायक नदियों में सबसे महत्वपूर्ण बनेर है जिसे बानगंगा भी कहते हैं। चामुण्डा नन्दीकेश्वर के प्रसिद्ध मन्दिर हिमाचल के इतिहास की धुरी यानी कांगड़े का किला, गुलेर जहां राजा हरिचन्द ने सन १४३५ में गुलेर राज्य की स्थापना की, हरिपुर का किला और स्थान जहां कांगड़ा चित्रकला का जन्म हुआ बनेर खड्ड के किनारों पर हुआ है। इसी खड्ड के आसपास पुराने पाषाण युग के पत्थरों के हथ्यार भी मिले हैं।

कांगड़ा में, कोटले का किला देहर खड्ड पर, महल मोरियां का किला कुणाह खड्ड पर और कुटलेहड़ का किला लूणखर खड्ड पर है। नूरपुर का एतिहासिक नगर जहां ब्रजराज मंदिर में कृष्ण की वह मूर्ति विद्यमान है जिसके सम्मुख मीरा अपने भजन गा गा कर बेसुद्ध हो जाया करती थी और जहां राजा बासु द्वारा बनवाए किले की दीवारों के नीचे अणखीले राजा बीर सिंह ने अपने प्राण दिये थे, जब्बर खड्ड पर है।

स्वां नदी जो ऊना घाटी में बहती है, में से होकर सन १३९९ में अमीर तैमूर देहरादून से जम्मू गया और १५२६ में बाबर की सेनाओं ने पानीपत की ओर प्रस्थान किया। स्वां नदी में ही दौलतपुर चौक के स्थान पर प्राग एतिहासिक स्वां पाषाण युग के पत्थर के हथियार मिले हैं।

सतलुज मानसरोवर और राक्षसताल से निकल कर तिब्बत में लगभग २५० किलोमीटर बह कर हिमाचल प्रदेश में दाखिल होती है।

ऋग्वेद में सतलुज और ब्यास की तुलना उन दो घोड़ियों से की गई है जिनकी

कि दौड़ में होड़ लगी -ो जब व्यास नदी द्वारा बचाये जाने के बाद ऋषी वशिष्ठ इस नदी में डूबने के लिये आए तो इसने अपने आप को सौ धाराओं में बाट लिया और ऋषी को डूबने के लिये कोई भी गहरी धारा न मिल सकी।

महादेव जी से पूछे जाने पर स्त्री धर्म का वर्णन करते हुए पार्वती जी ने जिन पवित्र नदियों से सलाह ली थी, शतद्रु उनमें से एक थी। महाभारत के आदि पर्व में इसे हेमव-ी कहा गया है।

बुशहर राज्य की राजधानी रामपुर, भज्जी राज्य की राजधानी सुन्नी और बिलासपुर राज्य की राजधानी बिलासपुर इसके दाएं तट पर बसी हुई हैं। रामपुर एतिहासिक लवी मेले के लिये जो हर साल २५ कार्तिक को लगता है, प्रसिद्ध है इसी नदी पर नीरत और दत्तनगर में भूण्डा रस्म प्रचलित थी। गरम पानी का स्रोत तत्तापाणी तीर्थ भी इसी के किनारे पर हैं।

सराहन जिसे शौणितपुर भी कहते हैं और जहाँ भीमा काली मंदिर में नरबली दी जाया करती थी और जो ऊषा के पिता बाणासुर की राजधानी थी भी सतलुज के किनारे स्थित है। यहाँ ही बाणासुर का अपने दामाद प्रद्युमन के साथ युद्ध हुआ था। इस युद्ध में इतना लहू गिरा कि सतलुज का पानी लाल हो गया।

यमुना नदी के किनारे गुरू गोबिन्द सिंह ने पौंटा नामक स्थान बसाया। गुरूजी वहाँ सम्वत १७४२ में गये और साढ़े चार साल रहे।

हिमाचल में से निकलने वाली, यमुना नदी की सहायक नदियाँ, पब्बर, टौंस, गिरि, बाता और जलाल हैं।

टौंस तीस मील तक हिमाचल और उत्तर प्रदेश की सीमा बनाती है। पुराणों में इसे तामस कहा गया है। पब्बर जिसके किनारे हाटकोटी देवी का आशीर्वाद प्राप्त है। बुशहर क इलाके से निकल कर टौंस में आ मिलती है।

कहते हैं कि जलाल नदी के पानी का रंग इसलिये लाल है कि सहस्रार्जुन को मारने के बाद परशुराम ने इसके उद्‌गम स्थान पर खून से लिपटा हुआ अपना फरसा धोया था। जलाल नदी गिरि में ददाहू के पास आकर मिलती है। ददाहू से डेढ़ मील पर रेणुका झील और परसराम ताल हैं।

बाता नदी धारठी धार से निकल कर बाता मण्डी के स्थान पर यमुना में गिरती है।

सरमौर राज्य की पहली राजधानी सिरमौर में थी, जिसे राजपरिवार समेत

गिरि की बाढ़ ने नष्ट कर दिया इस बारे कहते हैं कि राजा मदन सिंह ने एक नटी के साथ शर्त लगाई कि यदि वह रस्सी पर गिरि नदी को पार करके फिर उसी ढंग से वापिस आ जाएगी तो वह अपना आधा राज उसे दे देगा। जब वह नटी अपने कार्य में सफल होने को थी तो आधा राज जाने के डर से राजा के कर्मचारियों ने रस्सी को काट दिया और नटी नदी में गिर कर मर गई। इस पाप की सजा देने के लिये उपरोक्त बाढ़ आई।

घघर सिरमौर से निकल कर मोरनी की पहाड़ियों में से होती हुई मनीमाजरा से कुछ मील ऊपर मैदानों में दाखिल हो जाती है। इसका पौराणिक नाम दृषदवती है।

•

पुरातन पहाड़ी रियासतों के आपसी सम्बन्ध
और
सीमा विवाद

—अमर सिंह रणयतिया

चम्बा और बसोहली

हिमाचल प्रदेश की चम्बा रियास्त बहुत पुरानी थी। इस की पुरानी राजधानी ब्रह्मपुर (वर्तमान भरमौर) थी। उस समय इस राज्य की सीमा छत्राड़ी और गूं तक ही सीमित थी। इस की नीव मरु वर्मा (छठी शताब्दी ई०) ने डाली थी। दसवी शताब्दी में चम्बा के प्रसिद्ध राजा साहिल वर्मा ने इस का विस्तार वर्तमान चम्बा शहर तक किया। साहिल वर्मा दसवीं शताब्दी में चम्बा पर राज्य करते रहे। संभवत: उन के समय चम्बा राज्य की सीमा का विस्तार चुराह तक हो गया हो परन्तु इस प्रकार के अभिलेख अभी तक प्राप्त नहीं हुए हैं। खोज करता इस निर्णय पर पहुचे हैं कि चम्बा की सीमा का विस्तार चम्बा के राजा सोमवर्मन (१०६०-११०५ ई०) के समय चुराह तक हो गया था तथा ललित वर्मन (११४३-११७५) के समय तक चुराह अटूट रूप से चम्बा राज्य के अधीन रहा। चुराह के इलाका टिकरी परगना में १११४ ई० के समय का शिलालेख मिला है जिसमें चम्बा के राजा जष्टवर्मन (११०५ से १११८ ई०) का वर्णन है। इसी राजा के समय का दूसरा लेख पांगी घीटी में लुज नामक स्थान में प्राप्त हुआ है जिसमें भी इसी राजा का वर्णन मिला है। इन दोनों शिलालेख से सिद्ध होता है कि उस समय पांगी और चुराह चम्बा के अधीन रहे हैं।

चम्बा के राजा ललित वर्मन (११४३-११७५) के समय के चुराह में देवी कोठी और सई परगना में पनिहार पर शिलालेख प्राप्त हुए हैं जिन में राजा नागपाल और रानपाल का वर्णन है। खोजकर्ता इस निष्कर्ष पर पहुंचे है कि ये दोनों राजा बसोहली (बल्लवपुर बल्लोर) के थे क्योंकि पालवंशी राजा बल्लोर (बसोहली) में राज्य करते थे। इस से अनुमान लगाया जाता है कि ललितवर्मन के समय चुराह जनपद पुन: बसोहली रियास्त के अधीन हो चुका था। राजा ललितवर्मन के समय एक लेख सहली (सेचुनाला पांगी) नामक स्थान पर भी मिला है जिस में लुदरपाल राना का वर्णन है जिस में राजा ललितवर्मन का नाम भी अंकित हुआ है जिस से विदित होता है कि पांगी मंडल उस समय चम्बा के अधीन था।

चौदवीं शताब्दी के बाद चम्बा की सीमावर्ती रियास्त वल्लवपु (बल्लौर अथवा बसोहली) का विवाद विशेषकर चुराह के परगना जूंढ और मलई पग लगातार चलता रहा और केवल एक

बार मांदल, किहार और कियूर का विवाद भी सामने आया है जिसका वर्णन इसी लेख में किया जा रहा है।

एक अन्य विवाद का निर्णय मुगल बादशाह शाहजहां (१६२७-१६५८ ई०) के समय का है। इस विवाद को बहुत से राजाओं ने सुलझाया है। इस विवाद का निर्णय शाहजहां के आदेश से हुआ कि भलई का परगना चम्बा रियासत का है और इसे चम्बा को सौंपा जाय। इस समझौते पर बहुत से पहाड़ी राजाओं के टांकरी लिपि में हस्ताक्षर मिले हैं। यह अभिलेख भूरी सिंह संग्रहालय में सुरक्षित है।

एक अन्य अभिलेख जो औरंगजेब आलमगीर (१६५८-१७०७ ई०) के समय का है। जिसमें मुगल शासन के अधीन एक अधिकारी मीरखान ने चम्बा के राजा पृथ्वी सिंह के पक्ष में निर्णय लिया कि भलई परगना जिसे बसोहली के राजा संग्रामपाल ने छीन लिया था, चम्बा को सौंपा जाए तथा भद्रवाह जनपद जिसे संग्रामपाल को दिया गया था उसे भी चम्बा को सौंपा जाये।

चम्बा के राजा पृथ्वी सिंह (१६४१ से १६६४ ई०), राजा जनार्दन (१६१३-१६२३ ई०) के पुत्र थे। नूरपुर के राजा जगतसिंह जनार्दन वर्मन के समकालीन थे। जगतसिंह और जनार्दन का आपस में युद्ध हुआ जिसमें बनीखेत के निकट ढलोग नामक स्थान में जनार्दन वर्मन का भाई विशम्भर मारा गया। जनार्दन चम्बा भाग आया। कुटनीति से जगत सिंह ने जनार्दन वर्मन का वध कर दिया। पृथ्वी सिंह अभी छोटा बच्चा था उसे मंडी नरेश की शरण में भेजा गया। १६१३ ई० से १६४१ ई० तक चम्बा राज्य नूरपुर के अधीन रहा। पृथ्वी सिंह जब बालिग हुआ उसने जगत सिंह को तारागढ़ के युद्ध में बसोहली के राजा संग्रामपाल की सहायता से हराया और अपना राज्य मुगल सत्ता की सहायता से वापिस लिया। संग्रामपाल को भलई और जूंढ के परगने सहायता के इवज में दिये। सम्भवतः संग्रामपाल के सम्बन्ध फिर बिगड़ गए हों और जूंढ और भलई का विवाद फिर खड़ा हो गया हो अतः मुगल सत्ता ने अपना निर्णय दिया हो।

ऐसा प्रतीत होता है कि पृथ्वी सिंह किसी भी तरह जूंढ और भलई को प्राप्त न कर सका था। इस की पुष्टि एक अन्य ऐतिहासिक प्रसंग द्वारा की जा सकती है। पृथ्वी सिंह के पुत्र शत्रुसिंह (जिसका प्रचलित नाम चतरसिंह था) ने चम्बा पर १६६४ से १६९० ई० तक राज्य किया। शत्रु ने अपने भाई जयसिंह को रियासत का वजीर नियुक्त किया। जयसिंह को बसोहली से अपने राज्य वापस करने के लिये भेजा। इस प्रसंग में वर्णन मिलता है कि इन परगनों को उसके पिता पृथ्वी सिंह ने खोया था।

यही विवाद चम्बा नरेश उदय सिंह (१६९०-१७२० ई०) के समय पुनः खड़ा होता है। उदयसिंह के पुत्र उग्रसिंह (राज्य काल १७२०-१७३५) के समय बसोहली के राजा धीरज पाल से युद्ध हुआ जिस में धीरजपाल काम आए। जूंढ और भलई को एक बार फिर चम्बा ने प्राप्त किया।

सन १७५८ ई० में चम्बा के राजा उम्मीद सिंह ने जूंढ और भलई के परगने जो उस समय बसोहली के समकालीन राजा मेदनीपाल के पास थे, जीत कर पुनः अपने राज्य में मिलाए इसको बाद में बसोहली नरेश अमृतपाल ने जम्मु के राजा रणजीतदेव की सहायता से वापिस अपने राज्य में मिला लिए थे। यह घटना उस समय की है जब राजा उम्मीदसिंह की १७६४ ई० में मृत्यु हो गई थी और राज सिंह नाबालिग रह गए थे। राजा राजसिंह की माता जम्मु नरेश रणजीत देव की बहन थी। अब चम्बा का शासन अप्रत्यक्ष रूप से रणजीत देव द्वारा चलाया जाता था। रणजीत देव ने अकलू नामक व्यक्ति को चम्बा राज्य का बजीर नियुक्त किया था। शासन की बागडोर अकलू के हाथ में थी। जब राजसिंह बालिग हुआ तो उसने अकलू को कैद कर लिया और राज्य की बागडोर अपने हाथ में ली। इसका रणजीत देव ने रोष प्रकट किया और बसोहली के राजा अमृत पाल को सन १७७४ ई० चम्बा पर आक्रमण करने के लिए उकसाया। अमृत पाल ने चम्बा पर अपनी पूर्णशक्ति लगाकर आक्रमण किया। चम्बा राज्य को विजय कर लिया। तीन मास तक चम्बा शहर उनके अधीन रहा। राजसिंह उस समय राज्यपाल से मिलने कलानौर गए थे। जब वह वापस आ रहे थे तो उन्हें नूरपुर में इसका पता लगा। राजसिंह ने रामगढ़िया सिक्ख सरदार से सहायता मांगी। सिक्खों की सहायता से जम्मु और बसोहली की सेना को १७७५ ई० में अपने राज्य से बाहर भगाया।

जम्मु के राजा रणजीत देव की सन १७८१ ई० में मृत्यु हो गई। उनके उत्तराधिकारी जम्मु नरेश बृजराज देव ने चम्बा के जीते इलाके जूंढ, भलेई, भांदल किहार और डियूर बसोहली नरेश से चम्बा को वापस दिलाये लेकिन राजसिंह तो बसोहली से बदला लेता चाहता था अतः सन १६८२ ई० में बसोहली शहर को जीत लिया तथा बाद में एक लाख रुपये ले कर शहर को वापस कर दिया। इस घटना का उल्लेख एक टांकरी लेख में मिलता है जो लक्ष्मी नारायण मन्दिर के सामने चबूतरे पर अंकित है।

चम्बा के राजा राजसिंह सन १७९४ ई० में कांगड़ा के नेरटी नामक स्थान में सन १७९४ ई० में संसार चन्द के हाथों मारे गए थे। राजसिंह की मृत्यु होने पर बसोहली नरेश ने पुनः जूंढ और भलई परगने अपने राज्य में मिला लिये। परन्तु राजसिंह के पुत्र और उत्तराधिकारी जीतसिंह ने (१७९४-१८०८ ई०) पुनः उक्त इलाके अपने राज्य में मिला लिए। तत्पश्चात विदित होता है कि सन १८४६ ई० की अमृतसर सन्धि तक ऐसा कोई सीमा विवाद खड़ा नहीं हुआ। सन १८४६ ई० को रावी के उस पार का सम्पूर्ण क्षेत्र गुलाब सिंह को सौंप दिया था तथा बसोहली का विलय भी जम्मु कश्मीर राज्य में हो गया था।

चम्बा-भद्रवाह और किश्तवाड़

आजकल भद्रवाह जम्मु काश्मीर में है। यह छोटी सी पुरातन रियासत थी। किश्तवाड़ भी छोटा सा राज्य था। ये दोनों राज्य काफी समय से चम्बा के अधीन रहे लेकिन इन पर अपना राजा शासन करता था तथा चम्बा के अधीन रह कर अंशदान (कर) देता था। भद्रवाह और किश्तवाड़ के विषय में यह स्पष्ट तौर पर नहीं कहा जाता है कि ये दोनों राज्य कब से चम्बा के

अधीन आये। हच्चीसन ने चम्बा के राजा सोम वर्मन् (१०६० से १०८० ई०) के समय से ही भद्रवाह को चम्बा के अधीन माना है परन्तु चम्बा गैजिटियर में इसका खण्डन किया गया है कि जिस अभिलेख के आधार पर हच्चीसन ने अनुमान लगाया है इस में भद्रवाह का नहीं अपितु भद्रम गांव का विवरण है जो चम्बा का समीपस्त गांव है। भद्रवाह का वर्णन शीरखान नामक औरंगजेब के अधीन अधिकारी के समय आया है जब भद्रवाह और चुराह का भलई परगना चम्बा के राजा चतरसिंह (शुत्रुसिंह राज्यकाल १६६४-१६९० ई०) को दिए गए लेकि इस सनद की भाषा से ज्ञात होता है कि भद्रवाह पहले से ही चम्बा राज्य के अधीन था जिसे कुछ समय पूर्व बसोहली के राजा को दिया गया था। यह जनपद भी जूंढ और भलई परगने की तरह विवादग्रस्त चला आया होगा।

लिखित ऐतिहासिक अभिलेखों और विवरणों से विदित हुआ है कि चम्बा नरेश राजसिंह (१७६४ से १७९४ ई) ने भद्रवाह पर आक्रमण किया उस समय भद्रवाह पर फतेहपाल शासन करता था। फतेहपाल ने चम्बा की अधीनता १७८४ ई० में स्वीकार की। किश्तवाड़ ने भी चम्बा की अधीनता स्वीकार की।

सन १७८५ ई० में किश्तवाड़ पर चम्बा के आक्रमण का वर्णन मिलता है। यह आक्रमण चम्बा की सेना द्वारा भद्रवाह से किया गया। सेना के साथ फतेहपाल के भाई भूपचन्द तथा चम्बा के राजा राजसिंह के पुत्र जीत सिंह भी साथ थे। जीत सिंह ने सेना की कमान सम्भाली थी। उस समय जीत सिंह की उम्र केवल ग्यारह वर्ष बताई जाती है। सम्पतपाल के पुत्र मियां कुन्दन सिंह को चम्बा के अधीन किश्तवाड़ का राजा नियुक्त किया गया परन्तु छः मास के पूर्व ही उसने अपने आप को स्वतन्त्र घोषित कर दिया। इसीलिये उसे कैद कर चम्बा लाया गया और बाद में उसे रिहा कर दिया गया। वह चम्बा में ही बस गया। आज भी उसके उत्तराधिकारी चम्बा में रहते हैं। सन १७८६ ई० में किश्तवाढ़ पर अन्य आक्रमण का वर्णन मिलता है जब चम्बा की सेना छः मास तक वहां डेरे डाले रही और वहां के चौगान के छः चनार के सुन्दर वृक्षों को जलाने के लिए काट डाला।

सन १७८१ ई० में जम्मु के राजा रणजीत देव की मृत्यु के बाद बृजराजदेव का वर्णन भी मिलता है जिस के अनुसार वृजराज देव ने भद्रवाह और किश्तवाड़ को चम्बा के अधीन सौंप दिया था।

भद्रवाह और किश्तवाड़ अपनी अंदरूनी कलह के कारण ही चम्बा के अधीन रहे। आंतरिक विद्रोह के कारण ही दयापाल को फतेहपाल के समय राज्य सौंपा गया। फतेहपाल ने सन १७९० ई० तक राज्य किया।

चम्बा के राजा राजसिंह की मृत्यु के बाद चम्बा राज्य जीत सिंह ने संभाला। दयापाल को कैद कर चम्बा लाया गया तथा भूपचन्द (फतेहपाल के भाई) को भद्रवाह का राजा बनाया। बाद में भूप चन्द को भी कैद कर चम्बा लाया गया। उसके स्थान पर दयापाल को पुनः राजा नियुक्त किया गया जो सन १८१० ई० तक भद्रवाह पर शासन करता रहा बाद में दयापाल भाग कर दीना नगर चला गया। और वहीं उसकी मृत्यु हुई अब भूप चन्द के पुत्र पहाड़ चन्द को वहां का राजा बनाया गया।

सन १८१० ई० में किश्तवाड़ के वजीर लखपतराय की कमान में अफगानों की सहायता से भद्रवाह पर आक्रमण का वर्णन मिलता है। इस आक्रमण का विरोध करने के लिये चम्बा के वजीर नत्थु ने कमान संभाली। नत्थु वजीर की गुल्लुगढ़ के स्थान पर हार हुई। चम्बा की ओर से आक्रमण का हरजाना देना पड़ा।

१८२० ई० में चम्बा की ओर से भद्रवाह पर एक अन्य आक्रमण का वर्णन मिला है। जिसमें चम्बा की सेना को हार का मुंह देखना पड़ा। यह आक्रमण पधरी के जोत से हो कर किया गया। सन १८२१ ई० में चम्बा की ओर से पुनः आक्रमण हुआ। सिक्खों ने इस आक्रमण में चम्बा की सहायका की। पहाड़ चन्द की इस युद्ध में करारी हार हुई। पहाड़ चन्द किले को ढा कर भाग गया। रियासत को सीधे चम्बा के शासन के अधीन लाया गया। यह घटना चम्बा के राजा चढ़त सिंह के समय की है। चढ़त सिंह ने चम्बा में सन १८०८ से १८४४ तक राज्य किया। चढ़त सिंह का छोटा भाई जोरावर सिंह था जिसे अब भद्रवाह का छोटा राजा नियुक्त किया गया। जोरावर सिंह सन १८४५ ई० तक शासन करता रहा। इसी वर्ष जोरावर सिंह की जम्मु में मृत्यु हुई। अब जोरावर सिंह का लड़का प्रीतम सिंह वहां का छोटा राजा बना परन्तु जल्दी ही सन १८४६ ई० में अमृतसर सन्धि के अधीन भद्रवाह और किश्तवाड़ जम्मु के राजा गुलाब सिंह को मिल गए।

जम्मु कश्मीर तथा चम्बा

कश्मीर में छठी से आठवीं शताब्दी में कारकोट वंश इतिहास प्रसिद्ध है। कारकोट वंश में चन्द्रपीड, ललित दित्य मुक्तापीड और जयपीड जैसे राजाओं ने ख्याति प्राप्त की। बाण की कादम्बरी से प्रमाणित होता है कि इन्होंने कुल्लू पर आक्रमण किया तथा कुल्लू की राजकुमारी पत्रलेखा को अपहरण किया। रानी विलासवती ने उसे राजकुमार चन्द्रपीड के लिय पान बना-२ कर खिलाने के लिए चेरी का काम सौंपा। इन्हें उज्जैन का शासक बताया गया है इतिहास के पृष्ठों से ज्ञात होता है कि इस वंश के कश्मीरी राजा ललित दित्य मुक्तापीड ने (७२४ ई० से ७६० ई०) ने पंजाब, गुजरात काठियावाड़ और मेवाड़को अपने राज्य में सम्मिलित किया। पूर्व में बंगाल और बिहार तक ख्याति प्राप्त की। नेपाल को विजित कर अपने अधीन किया। तिब्बत और बदखशां भी इनकी छत्र छाया में आए। इस वंश के राजाओं का वर्णन चम्बा की इतिहास-श्रृंखलाओं में नहीं मिलता उस समय चम्बा राज्य ब्रहपु के नाम से जाना जाता था तथा इसकी सीमाएं चम्बा की ओर मेरू वर्मा के समय केवल छत्राड़ी और गूं तक सीमित थी। ब्रहपु राज्य का चम्बा नगर तक विस्तार राजा साहिलवर्मा (९२०-९४०) के समय हुआ जब उस नरेश ने अपनी राजधानी चम्बा लाई।

कश्मीर का प्रथम प्रसंग चम्बा की इतिहास श्रृंखलाओं में चम्बा के राजा सालवर्मन के समय आता है। सालवाहन का राज्यकाल (१०४०-६०) बताया गया है। इस राजा के समय कश्मीर के राजा अनंतवर्मन का आक्रमण बताया गया है। इस राजा ने वल्लवपुर (बल्लोर-बसोहली) पर रावी तक आक्रमण किया। राजतरंगणी में स्पष्ट लिखा है कि राजा की अधीनता स्वीकार करने के लिये बाधित किया। उसने अधीनता को नहीं स्वीकारा अतः उस पर आक्रमण करके

उसे गद्दी से उतार दिया गया। इस राजा का नाम तरंगणी में 'साल' लिखा है। इसी कारण अब तक यही विश्वास रहा है कि राजा साहिलवर्मन था परन्तु बाद में विद्वानों ने खोज के बाद पता लगाया है कि यह राजा साहिल वर्मन न होकर सालवाहन ही था ऐसा विदित होता है कि इस राजा के बाद काफी समय तक चम्बा कश्मीर के अधीन कर दाता रहा। अनंतदेववर्मन लौहार वंशीय राजा था। अनंतवर्मन के बाद कलष नामक लौहार वंशीय राजा गद्दी पर बैठा। वह अनंत-वर्मन का पुत्र था। तंरगणी के अनुसार कलष ने चम्बा के राजा अष्टवर्मन (१०८० से ११०५ ई०) की बहन से विवाह किया था। उस राजकुमारी का नाम वप्पक लिखा है। कश्मीर के राजा हर्ष उसी राजकुमारी से पैदा हुए थे। जैसे कि पहले लिखा है कि चम्बा राज्य उस समय कश्मीर का करदाता राज्य था। कलष के समय श्रीनगर में एक दरबार का वर्णन मिलता है जिसमें चम्बा से हजारा तक के राजाओं ने भाग लिया। अष्टवर्मन के बाद चम्बा में जष्टवर्मन (११०५ से १११८ ई०) ने राज्य किया। उस के समय कश्मीर में लौहार वंशीय और दम्र वंशीय के मध्य कश्मीर की गद्दी के लिए संघर्ष चला हुआ था। एक ओर हर्ष राज्य के लिए संघर्ष कर रहा था। दूसरी ओर उसका विरोधी दम्र वंशीय ससुल था। जष्टवर्मन ने हर्ष का साथ दिया। बाद में लड़ते हुए अपने पुत्र भोज के साथ लड़ाई में मारा गया। तदुपरान्त भोज का पुत्र और हर्ष का पोता भिक्षचार्य सत्ता प्राप्ति के लिए जीतोड़ कोशिश करता रहा। जष्टवर्मन ने उस का भी साथ दिया। जब चम्बा के राजा उदयवर्मन (११२०–११४३ ई०) ने चम्बा की गद्दी संभाली उस समय एक ओर दम्र वंशीय उच्चल और ससुल कश्मीर की गद्दी के लिए संघर्षशील थे तो दूसरी ओर लौहार वंशीय भिक्षचार्य ने अपने उत्तराधिकार के लिए सतत संघर्ष का रास्ता अपनाया था। अब चम्बा के शासक उदयवर्मन ने दम्रवंशीय घराने का साथ दिया था इसका कारण था कि ससुल ने भी चम्बा के राजपरिवार से दो राजकुमारियां, देवलेखा और तारालेखा को विवाहिया था। वे राजकुमारियां ११२८ ई० में ससुल की मृत्यु होने पर सती हो गई थी। राजतरंगणी के अनुसार उदयवर्मन ११२२ ई० में काश्मीर में थे।

१११२ ई० में भिक्षचार्य कुरुक्षेत्र में पहाड़ी शासकों से मिला तथा अपने उत्तराधिकार के लिए लड़ता रहा। ११२० तक जष्टवर्मन और अन्य पहाड़ी शासकों ने भिक्षचार्य का लगातार साथ दिया। अंत में वह विजयी रहा परन्तु केवल मात्र छः मास की अल्प अवधि तक गद्दी संभाल सका। तत्पश्चात ससुल कश्मीर पर शासन करता रहा।

चम्बा गैंजिटियर में उचल और ससुल को लौहार वंशीय बताया है जब कि वास्तव में कश्मीर की प्रसिद्ध शासक राज्ञी दिद्दा (९८१-१००३ ई०) के भतीजे संग्रामराज से लाहौर वंश की स्थापना मानी जाती है। दिद्दा के माता-पिता लौहार वंशीय थे। उसके बाद के राजा हिरण्य, अनंत कलष, उत्कर्ष, हर्ष, भोज और भिक्षचार्य सब के सब लौहार घराने से सम्बन्ध रखते थे। उच्चल और ससुल दम्रवंशीय थे न कि लौहार वंशीय।

एक अन्य प्रसंग के अनुसार चम्बा के राजा शत्रुसिंह, जिन्हें आम चतरसिंह (१६६४–१६९० ई०) के नाम से जाना जाता है, ने पांगी के समीप पड़डर को अपने राज्य में मिलाया।

यहां एक किले का निर्माण किया जो चतरगढ़ के नाम से प्रसिद्ध था। बाद में गुलाब सिंह के सेनापति जोरवर सिंह ने इस किले को विजित किया तथा गुलाबगढ़ नाम दिया।

इसी लेख में चम्बा बसोहली सम्बन्ध में राजा राजसिंह के समय जम्मु के राजा रणजीत सिंह के संघर्ष का वर्णन पहले ही किया जा चुका है। भद्रवाह किश्तवाड़ का वर्णन और जम्मु में विलय का उल्लेख विस्तृत रूप से किया जा चुका है।

चम्बा और कुल्लू के आपसी सम्बन्ध

चम्बा और कुल्लू बहुत पुरानी रियास्तें थी। इनके आपसी सम्बन्ध भी काफी पुराने हैं। इन सम्बन्धों पर कुछ प्रचलित अनुश्रुतियों और इतिहास श्रृखलाओं की बिखरी सामग्री द्वारा प्रकाश डाला जा सकता है। क्रमबद्ध वर्णन कठिन है।

एक स्थान पर—'कुल्लू, लाहोल और स्पीति' पुस्तक के लेखक कैपटन हारकोरट ने चम्बा की सार्वभौमता स्पष्ट करने के लिये लिखा है कि कुल्लू के राजा के कोई सन्तान न थी। गद्दी का उत्तराधिकारी चुनने के लिए चम्बा (ब्रह्मपुर), लद्दाख, सुकेत, बुशहर, कांगड़ा और भंगाहल राजाओं ने मिलकर मंत्रणा की कि कुल्लू की गद्दी पर गणेशपाल को बिठाया जाये। इसमें टिप्पणी की है कि ब्रह्मपुर (चम्बा) एक महत्वपूर्ण राज्य रहा है। ब्रह्मपुर राज्य का जन्म ईसा की छठी शताब्दी से माना जाता है। सुकेत राज्य की नींव वीरसेन ने सन् ७६५ ई० में डाली। पांगना इस की पुरानी राजधानी थी। मण्डी राज्य की नींव सुकेत राज्य के विभाजन से हुई। सुकेत राज्य के राजा साहुसेन के भाई बाहुसेन ने मण्डी राज्य की अलग से १००० ई० में नींव डाली। इस की राजधानी बल्ह क्षेत्र में 'हाट' नामक स्थान में बनाई बाद में पुरानी मंडी को राज्य की राजधानी बनाया। भंगाहल की स्थापना ग्यारवीं शताब्दी में हुई। अतः उक्त घटना ग्यारवीं-बारहवीं शताब्दी की विदित होती है। कुल्लू चम्बा के सम्बन्धों की जनश्रुति और इतिहास पर आधारित समग्री सातवीं और आठवीं शताब्दी से लगातार प्राप्त हुई है। ब्रह्मपुर के राजा मेरूवर्मा और कुल्लू नरेशों के मध्य उस समय की विग्रह की कहानियां प्रचलित हैं। इतिहास श्रृंखलाओं में कुल्लू के नरेश दातेश्वरपाल और ब्रह्मपुर के राजा उमेर के मध्य संघर्ष की घटना का वर्णन हुआ है जिसमें कुल्लू नरेश लड़ाई में मारे गए। चम्बा की इतिहास श्रृंखला में 'उमेर' नामक कोई राजा नहीं हुआ है। विद्वानों ने स्पष्ट किया है कि 'मेरू' को ही 'उमेर' के नाम से सम्बोधित किया गया है। एक अन्य संकेत में कैपटन हार्टकोरट ने लिखा है कि ब्रह्मपुर के राजा ने कुल्लू के राजा अमरपाल को युद्ध में पराजित किया और मार डाला। उसके अन्य पुत्र भी इस युद्ध में काम आए। केवल एक पुत्र शीतलपाल राजा बुशहर की शरण में रहा। शीतलपाल के पांच उत्तराधिकारियों ने कुल्लू पर राज्य नहीं किया। इससे स्पष्ट होता है कि कुछ पीढ़ियों तक कुल्लू चम्बा (ब्रह्मपुर) के अधीन रहा। कुल्लू नरेश जारेश्वर द्वारा पुनः कुल्लू विजित कर वापस लेने की घटना ६०० ई. की बताई है। यह घटना ब्रह्मपुर नरेश मेरुवर्मा के समय से पूर्व की विदित होती है। उस समय कमाऊं में छोटा सा राज्य तिब्बती आक्रमणों के कारण नष्ट भ्रष्ट हो चुका था

तथा बुड्ढल घाटी में चम्बा ब्रह्मपुर राज्य स्थापित होकर अपना प्रसार और विस्तार कर रहा था।

ब्रह्मपुर और कुल्लू के मध्य संघर्ष सम्भवतः लाहोल के रास्ते से होता रहा। लाहोल उस समय स्पिती के अधीन था बाद में लद्दाख के अधीन रहा। ब्रह्मपुर के सम्बन्ध इन राज्यों से सौहार्द-पूर्ण प्रतीत होते हैं। ऐसा भी वर्णन मिला है कि लाहोल को चम्बा राज्य से कुल्लू नरेश ने छठी शताब्दी में जीता था। इससे पता लगता है कि लाहोल इससे पहले चम्बा के अधीन था। शायद चम्बा-कुल्लू संघर्ष इसी कारण था।

विद्वान इतिहास लेखकों ने बैंशाखदत्ता के मुद्राराक्षस नाटक में चित्रवर्मन को ब्रह्मपुर नरेश साबित करने का प्रयत्न किया है। उनका कथन है कि कुल्लू में 'वर्मन' वंश प्रचलित नहीं था परन्तु मुद्राराक्षस तो ब्रह्मपुर की स्थापना होने से कुछ शताब्दियों पूर्व लिखा गया था अतः यह संभावना उचित संगत नहीं हैं। संभवतः वह ब्रह्मपुर की स्थापना से पूर्व का कोई अन्य राजा हो और ब्रह्मपुर और लाहोल के आस पास राज्य करता हो।

ब्रह्मपुर के राजा स्वर्ण वर्मन (राज्यकाल लगभग ७८० ई.) के समकालीन कुलूत नरेश नारदपाल के समय का चम्बा-कुल्लू विवाद भी मिलता है। उस समय ब्रह्मपुर की सेना का क्षीण होने का पता लगता है।

ब्रह्मपुर के इतिहास प्रसिद्ध राजा साहिल वर्मन (९२०-९४० ई०) ने राज्य का विस्तार रावी नदी के साथ-साथ वर्तमान चम्बा शहर तक किया। ब्रह्मपुर से राजधानी चम्बा में लाई गई। उस समय की कुल्लू और चम्बा के विग्रह की घटनाएं प्रचलित हैं। एक वर्णन के अनुसार रोहतांग को लांघकर राहला के समीप उस समय मजनकोट किले का निर्माण किया गया उसी समय से सम्बन्धित एक अनुश्रुति है कि लम्बे अरसे के बाद ब्रह्मपुर और कुल्लू के मध्य शांति स्थापित हुई। कुल्लू की सेना ने फिर भी कूटनीति से काम लेना चाहा। उन्होंने ब्रह्मपुर की सेना को दावत दी और दावत का समय रात का रखा। ब्यास नदी पर लांघने के लिए घासफूस से ढका पुल बनाया। जब चम्बा की सेना दावत पर जारही थी काफी अंधेरा हो चुका था। एक-एक कर काफी सेना ब्यास नदी में गिर पड़ी। भेद उस समय खुला जब एक व्यक्ति ढोल लिये था और पार करते समय वह भी नदी में गिर पड़ा। गिरते हुए ढोल की आवाज होती गई। अन्य सेनानी अब सतर्क हो गए। इस प्रकार काफी सेना नष्ट हो गई।

एक अन्य अनुश्रुति है। जिसमें कहा जाता है कि चम्बा की सेना ने मनाली के राना पर आक्रमण किया। गद्दी पद्‌वर के किले पर काफी समय तक राना की सेना पर घेरा डाले रखा। राना के सेनानियों ने एक युक्ति से काम लिया। उन्होंने किले में आई एक कुत्ती को दुहा। चावल में दूध मिलाकर बाहिर घेरा डाले गद्दी सेना पर फैंका ताकि उन्हें यह मालूम हो कि किले में अभी काफी भोजन सामग्री है और वे खीर बना-बना खा रहे हैं।

अन्यत्र कुल्लू के राजा बिधि सिंह (१६६३-१६७४ ई.) और चम्बा नरेश शत्रुसिंह

(१६६४-१६६० ई.) मध्य लाहोल के संघर्ष का वर्णन मिलता है। बिधिसिंह ने चम्बा की सीमा पर आक्रमण किया। उस समय चम्बा लाहौल की सीमा चन्द्र और भागा के संगम तक तांदी नामक स्थान तक फैली थी। बिधि सिंह आक्रमण करते करते लाहोल के त्रिलोक नाथ मन्दिर तक जा पहुंचा। लोक विश्वास है कि वह त्रिलोकनाथ की मूर्ति को कुल्लू ले जाना चाहता था। उसने मूर्ति उठानी चाही परन्तु उठा न सकी। उस पर संघर्ष के समय तलवार के घाव को अब भी देखा जा सकता है। उस समय स्पिती की ओर से गुज राज्य का विस्तार लाहोल की ओर हो रहा था। तथा लद्दाख राज्य तिब्बती आक्रमणों से क्षीण पड़ता जा रहा था। इसीलिए बिधिसिंह ने समय का लाभ उठाना चाहा। उसी राजा के समय बाद में चम्बा और कुल्लू के मध्य लाहोल की सीमाएं निश्चित हुई।

चम्बा-कांगड़ा सम्बन्ध

चम्बा और कांगड़ा सम्बन्ध भी बहुत पुरातन प्रतीत होते है। चम्बा के राजा साहिल वर्मन ने अपनी सीमा का विस्तार धौलाधार उपत्यक के साथ-साथ काफी दूर तक किया था।

चम्बा कांगड़ा सीमा विवाद चम्बा के राजा प्रताप सिंह के समय सामने आ ा है। प्रतापसिंह का राज्यकाल (१५५६ से १५८६ ई०) तक हुआ। इस युद्ध में राजा का नाम चन्द्रपाल लिखा है। विद्वानों ने चन्द्रपाल को कांगड़ा के राजा का होना संदिग्धता प्रकट की है क्योंकि कांगड़ा में कभी पाल वंश ने राज्य नहीं किया। हो सकता है यह राजा भंगाहल का हो। ऐसा भी वर्णन मिला है। कि प्रताप सिंह ने गुलेर पर विजय पाई थी। इस युद्ध में गुलेर के राजा का छोटा भाई जीतसिंह युद्ध में मारा गया। चड़ी और घरोह के इलाके भी प्रतापसिंह के अधीन चम्बा राज्य में थे। बाद में अकबर के वित्त मन्त्री टोडर मल ने कांगड़ा के ६६ गांव मुगल सेना मुक्ति के लिए प्राप्त किए थे जिन में चड़ी और घरोह क्षेत्र भी था।

अब जब मुगल सत्ता का पतन हुआ चम्बा नरेश उम्मीदसिंह (१७४८-१७६४) ने अपनी सीमा का विस्तार पुनः कांगड़ा जनपद तक किया तथा चड़ी और घरोह अपने राज्य में पूर्ववत् मिला लिये। उम्मीद सिंह के राज्य का विस्तार पालमपुर और बीड़ भंगाहल तक हुआ। सीमा की सुरक्षा के लिए पठियार के किले को मजबूत करना पड़ा। सन १७५८ ई० में जालन्धर के राज्यपाल और तत्कालीन कांगड़ा के राजा घमंडचन्द ने पालमपुर तालुके से उम्मीदसिंह को पश्चिम की ओर खदेड़ा। तत्कालीन अफगानशासक अहमदशाह अबदौली ने भी उम्मीदसिंह के सीमा विस्तार पर रोष प्रकट किया और मुगल कालीन सेना मुक्ति के क्षेत्र को खाली करने के लिए कहा।

कांगड़ा के प्रसिद्ध शासक और कलाप्रेमी राजा संसारचन्द (१७७५ ई० से १८२३ ई०) ने चम्बा के राजा राजसिंह (१७६४-१७९४ ई०) से कांगड़ा के चड़ी, घरोह और रिहलु के इलाके, जो अब तक चम्बा के अधीन थे, खाली करने के लिए कहा। राजसिंह ने स्पष्ट इनकार कर दिया फलतः नेरटी के क्षेत्र में राजा राजसिंह और संसार चन्द का घमासान युद्ध हुआ। जिसमें राजसिंह वीरता से लड़ते हुए मारे गए। यह युद्ध सन१७९४ ई० में लड़ा गया था। युद्ध

सोम

के बाद चम्बा की सीमा रिहलु क्षेत्र तक सिकुड़ कर रह गई। बाद में रिहलु क्षेत्र को रणजीत सिंह ने अपने राज्य में मिला लिया। तत्पश्चात चम्बा राज्य की सीमा मोतला के हटली गांव तक ही सीमित रही थी।

चम्बा और बड़ा भंगाहल

पहाड़ी राज्यों में बड़ा भंगाहल भी अपनी महत्ता रखता था। यह राज्य वन सम्पदा का धनी था। इसके पड़ोसी राज्य चम्बा, मंडी कुल्लू, गुलेर और कुटलहड़ सदा ही इसको हड़पने का प्रयत्न करते रहे। पुरातन अभिलेखों में कुल्लू के राजा प्रीतम सिंह का चम्बा के राजा राजसिंह को एक पत्र प्राप्त हुआ है जिस में मंत्रणा हुई कि भंगाहल पर आक्रमण किया जाए और उसे अपने राज्य में मिलाया जाए। चम्बा, गुलेर और कटलहड़ के मध्य भी इस प्रकार के प्रस्ताव इतिहास के पृष्ठों में दृष्टिगत हुए हैं।

इस राज्य की नींव एक ब्राह्मण परिवार द्वारा बारहवीं शताब्दी में पड़ी तथा इसका विस्तार बाद में पालमपुर, बैजनाथ और गुम्मा तक हुआ। मंडी के राजा सूरसेन ने इस पर सीमा विवाद के कारण आक्रमण किया था। इस से पूर्व सिद्धसेन, मंडी नरेश ने भंगाहल नरेश पृथ्वीपाल का वध कर उसके धड़ को मंडी के घंटाघर में दबाया। कुल्लू नरेश ने अन्य राज्यों के आक्रमणों से उसे बचाया परन्तु कई बार इसे हड़पने का प्रयत्न भी किया।

एक वर्णन के अनुसार सन् १७३५ ई० में वहां के राजा दलेलपाल पर कुल्लू कुटलहड़, गुलेर तथा जसवां राजाओं द्वारा सामूहिक आक्रमण हुआ जिसमें वे भंगाहल को प्राप्त करने में असफल रहे। भंगाहल के राजा ने आक्रमणकारियों के सिरों के ढेर पीन नदी के किनारे लगाए तथा विजय श्री मनाई।

भंगाहल का अंतिम राजा मानपाल था जिस के राज्य में लनोफ और पपरोला भी थे। वह पड़ोसी राजाओं से आतंकित था। उन के अत्याचार के विरुद्ध मुगलों की सहायता प्राप्त करने जा रहा था कि रास्ते में ही उस की मृत्यु हो गई। उसकी विधवा अपने नवजात शिशु निहालपाल को लेकर चम्बा के राजा राजसिंह की शरण में प्रस्तुत हुई चम्बा के राजा ने उसे जागीर प्रदान की।

जैसे कि इस लेख की पूर्व लिखित पंक्तियों से सिद्ध होता है कि चम्बा की सीमा धौलाधार की उपत्यका के साथ-साथ पठियार तक विस्तृत थी इस राज्य का भंगाहल से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा होगा। समय-२ पर सीमा विवाद भी सामने आते रहे। उधर भंगाहल की सीमा भरमौर क्षेत्र से लगती है। भरमौर से भंगाहल तक रावी नदी के किनारे-२ एक पहाड़ी मार्ग भी है यह मार्ग कुल्लू मनाली भी जा निकलता है।

चम्बा नूरपुर

नूरपुर भी चम्बा की छोटी सी सीमावर्ती रियासत थी। चम्बा नूरपुर संघर्ष उस समय सामने आता है जब नूरपुर नरेश ने चम्बा की सीमा पर सन १६२३ ई० में आक्रमण किया था।

यह आक्रमण चम्बा के संधारा नामक गांव के रास्ते किया था। बनीखेत के समीप ढलोग नामक स्थान पर घमासान युद्ध हुआ था जिस में चम्बा के राजा जनार्दन का भाई विशम्भर वीरगति को प्राप्त हुआ था। राजा वापस चम्बा भाग गया जहां जगतसिंह ने उसे धोखे में बुलाकर उस के पेट में कटार घोंप दी थी। राजा का वहीं देहान्त हो गया था। जनार्दन के एक मात्र नवजात शिशु पृथ्वी सिंह को बचा लिया गया। उसने मंडी के राजा के ही शरण ली और वहीं बड़ा हुआ। चम्बा सन १६२३ ई० से १६४३ ई० तक जगतसिंह के अधीन रहा। इसी दौरान जगत सिंह ने तारागढ़ किले का निर्माण किया तथा मुगलसेना के विरुद्ध इस किले में ही शरण लेता रहा।

पृथ्वीसिंह जब बालिग हुआ तो वह रोहतांग दर्रे से लाहौल और पांगी के रास्ते चम्बा पहुंचा। उसने बसोहली के राजा संग्राम पाल की सहायता और मुगलसत्ता की शह पर तारागढ़ किले पर आक्रमण कर जगतसिंह को हरा कर अपना खोया राज्य प्राप्त किया।

इससे पूर्व जगतसिंह के बड़े भाई सूरजमल को चम्बा नरेश ने जहांगीर के समय शरण दी जब मुगल सत्ता सूरजमल का पीछा कर रही थी। वह भटयात तहसील की असराल वासा नामक स्थान पर चम्बा की शरण में दिन काटता रहा। अन्ततः वहीं पर उस राजा की मृत्यु हुई। सूरजमल के भाई माधव ने भी चम्बा की शरण ली थी। परन्तु जहांगीर के अनुरोध पर उसे वापस मुगलों के हवाले करना पड़ा। जगतसिंह सूरजमल और माधव राजा वासुदेव के पुत्र थे। वसु नूरपुर का प्रसिद्ध राजा हुआ है जिसने पठानकोट से उस राज्य की राजधानी नूरपुर बनाई थी जिसका पुराना नाम धर्मगिरि और बाद में धमेठी पड़ा था।

चम्बा-नूरपुर के सम्बन्ध में नूरपुर के राजा वीरसिंह का वर्णन भी आता है। यह राजा महाराजा रणजीत सिंह का समकालीन था। रणजीत सिंह ने उस समय सभी छोटी बड़ी पहाड़ी रियासतों को अपने अधीन कर लिया था रणजीत सिंह ने सन १८१२ ई० में स्यालकोट में एक दरबार का आयोजन किया था जिसमें वीरसिंह सम्मिलित न हो सका था अतः उस पर भारी जुर्माना किया गया। उसने सिक्ख सत्ता के विरुद्ध बिद्रोह किया परन्तु असफल रहा। उसे गोबिंदगढ़ किले में बन्दी बनाकर रखा गया। वह वहां पर सात वर्ष तक क़ैद रहा। वह चम्बा के राजा का दामाद था अतः उसे चम्बा के राजा ने ८५ हजार रुपये देकर रिहा कराया। वह काफी समय तक चम्बा की शरण में रहा। सन १८३५ ई० में जब योरोपियन यात्री वीन चम्बा आए उस समय वीरसिंह चम्बा में था। उसने अपनी दयनीय दशा की कहानी वीन को सुनाई थी।

चम्बा-मन्डी और सुकेत

इन दोनों राज्यों की सीमाएं आपस में नहीं मिलीं अतः सीमा विवाद की घटनाएं देखने, सुनने और पढ़ने में नहीं आई हैं। केवल इक्के दुक्के अभिलेखों में मंगाहल की सीमा के विषय में मण्डी और चम्बा के राजा राजसिंह के मध्य पत्र व्यवहार मिला है, तथा अन्यत्र अन्य राजाओं के साथ मंगाहल के राज्य पर आक्रमण करने या उस की सीमा विभाजन पर अन्य राजाओं के साथ चम्बा और मंडी के राजाओं का सम्मिलित होना और सक्रिय भाग लेने की घटनाएं सामने आई हैं।

चम्बा (ब्रह्मपुर) और पुरातन सुकेत राज्य की ऐतिहासिक घटना नवीं शताब्दी की अनुभूतियों के आधार पर सामने आई हैं। ब्रह्मपुर राज्य के राजा लक्ष्मण वर्मन पर किरों ने आक्रमण किया और मार दिया। राजा की रानी गर्भवती थी अतः राज्य के हित चिंतक उसे पालकी में डालकर कहीं सुरक्षित स्थान पर ले गए। रास्ते में गेठा परगना के धड़ाओ गांव के समीप रानी ने पालकी से उतर कर एक गुफा में बच्चे को जन्म दिया। उसने बच्चे को वहीं छोड़ा और स्वयं पालकी में सवार हो सुरक्षा के लिए अग्रसर रही। पालकी हल्की होने के कारण अहलकारों को भेद खुल गया। वे बच्चे को लेने के लिए उसी गुफा में वापस आए। बच्चा सुरक्षित मिला। चूहे इसके आस-पास बैठ कर उसे सहला रहे थे। इसी कारण इसका नाम मूशवर्मन पड़ा। रानी कांगड़ा में कहीं अज्ञात स्थान पर ब्राह्मण के घर रही। उस ब्राह्मण को रानी ने गुरु माना। बाद में भेद खुला कि वह ब्रह्मपुर की रानी है अतः उसे बच्चे सहित सुकेत के राजा के यहां भेजा गया। बच्चे का पालन पोषण भी वहीं हुआ। राजा ने अपनी राजकुमारी से उसका विवाह करवाया तथा पांगना में उसे जागीर दी। बाद में सेना और धनधान्य से उस की सहायता की। उस ने ब्रह्मपुर राज्य को पुनः विजय किया। वहां वह मूशवर्मन के नाम से राजा बना। उस का राज्यकाल ८२० ई० बताया जाता है।

एक अन्य घटना के अनुसार चम्बा के राजा जनार्दनवर्मन (१६१३ से १६२३ ई०) का नूरपुर के राजा जगतसिंह ने कूटनीति से वध किया चम्बा राज्य पर नूरपुर के राजा का अधिकार हो गया। जनार्दन के पुत्र पृथ्वीसिंह को गुप्तरूप से राजा मण्डी की शरण में पहुंचाया। राजा मण्डी ने उस की धन धान्य से सहायता की। पृथ्वीसिंह रोहतांग लांघ कर लाहौल और पांगी के रास्ते तथा पुनः चनेहनी पास को पार कर अपने राज्य में पहुंचा। उसने जगतसिंह को तारगढ़ के युद्ध में हरा कर अपना राज्य वापस लिया।

चम्बा और मण्डी के मध्य वैवाहिक सम्बन्धों का वर्णन भी यदकदा मिला है।

सहायक-सामग्री जिनकी सहायता से यह लेख तैयार हुआ

(क) ऐंटीक्वीटीज ऑफ चम्बा I & II —हच्चीसन
(ख) हिस्ट्री ऑफ पंजाब हिल्लस् स्टेटस I & II—हच्चीसन और वोगल
(ग) गैजिटियर ऑफ इंडिया-चम्बा —ठाकुरसेन नेगी
(घ) लाहौल एंड स्पीति —कैप्टन हारकोर्ट
(ङ) हिमाचल इतिहास और परम्परा —बी० एल० कपूर
(च) कश्मीरी ललित कलाएं —अवतार कृष्णा राजदान
(छ) अरली वुडन टैम्पलज ऑफ चम्बा —हरमन गटज
(ज) अन्य जनश्रुतियां और लोक विश्वास

भोज परमार की सांस्कृतिक धरोहर---अर्की (बाघल)

—अमर देव आंगिरस

प्राचीन भारत में आदिम जन-जातियां निवास करती रहीं। हिमाचल के आंचल में किन्नर, किरात, नाग, खश, कोल संस्कृति के अवशेष आज भी देखे जा सकते हैं। यक्षों राक्षसों और गंधर्वों के संदर्भ भी पौराणिक साहित्य में मिलते हैं । महाभारत में उल्लिखित है कि रावी नदी के पूर्व में हिमालय तक फैला हुआ पहाड़ी प्रदेश त्रिगर्त प्रदेश था। जो रावी, ब्यास और सतलुज की तीन नदियों के आस पास की उपजाऊ भूमि में अवस्थित था। इसे जालन्धरायण कहते थे। दूसरा प्रमुख राज्य कुणिन्द गणराज्य था जो सिरमौर महासू तथा सोलन का भाग था। महाभारत में किन्नर प्रदेश का वर्णन भी आया है। विराट राजा के राज्य की सीमाएं सिरमौर के अन्तर्गत थीं। पांडव वनवास तथा गुप्त वास में इसकी पर्वत-शृंखलाओं में निवास करते रहे। इसके अतिरिक्त हिमाचल के कुल्लू, मण्डी, अर्की, महासू में भी इनका आवास रहा ऐसे प्रमाण यहां के धर्म स्थलों तथा जनश्रुतियों में पाये जाते हैं।

प्राचीन हिमाचल के सुव्यवस्थित राज्य में त्रिगर्त (काँगड़ा), कुल्लूत (कुल्लू), कुलिंद्र (सिरमौर) युगन्धर (बिलासपुर-नालागढ़) बुशहर गब्दिका (चम्बा) और औदुम्बर (पठानकोट)। शेष हिमाचल इन्हीं राज्यों का भाग था। शकों के प्रवेश के पश्चात् सम्राट हर्षवर्द्धन (छठी शती) तक हिमाचल यहां की मूल जातियों का इतिहास ही रहा है।

ऐतिहासिक आलेखों के अनुसार चम्बा की नींव ५५० ई० के लगभग, कहलूर की ७०९ ई० मण्डी और सुकेत की ७६५ ई० तथा सिरमौर की ११३९ ई० में मिलती है। महमूद गजनवी के हमलों के अन्तर्गत उसने १००९ ई० में कांगड़ा के मन्दिर तथा दुर्ग को लूटा। इसके पश्चात तुर्कों मुगलों तथा अन्य पश्चिमी एशिया के बर्बर शासकों के भारत पर आक्रमण के साथ-साथ हिमाचल के काँगड़ा, सिरमौर तथा अन्य क्षेत्रों पर भी आक्रमण हुए। इन आक्रमणों के फलस्वरूप अनेक मध्यभारतीय राजपूत सामन्तों ने हिमाचल प्रदेश के अनेक क्षेत्रों पर आक्रमण कर राज्य स्थापित किये। दसवीं शती के पश्चात हिमाचल विभिन्न छोटे राज्यों में विभाजित मिलता है। इन स्वतन्त्र रियासतों में क्योंथल, बघाट, कुठाड़, कुनिहार, बाघल, मांगल, भज्जी, धामी, महलोटे, कोटा, बेजा, भरोली, जुब्बल, सारी, रावीगढ़, बलसन, रतेश, घूंड, ध्योग, कुमारसेन, करागंड, खनेटी,

कोटखाई, कोटगढ़, दरकोटी, देलढ, थराच, ढाड़ी, शांगरी, डोडराक्वार, राम बुशैहर, गुलेर; नूरपुर, जसवान, दातारपुर, डाढ़ा, और नालागढ़, मण्डी, सुकेत और लाहुल के नाम उल्लेखनीय हैं।

मध्य भारत पर मुगल आक्रमणों तथा रियासतों के आपसी द्वंद्व के कारण बहुत से मुगल सामन्तों ने पहाड़ों में भाग कर अपनी जानें बचाई। सरदार मुहम्मद ने रंजिया सुल्तान से विद्रोह किया और सिरमौर के राजा की शरण ली। सरदार कुटलग खां ने मुहम्मद शाह प्रथम के विरुद्ध विद्रोह किया और सिरमौर राज्य में भाग कर जान बचायी।

मध्यभारत के युद्ध प्रिय अभिमानी राजपूतों ने मुगलों से पराजित होकर अपनी सेनाओं सहित पहाड़ों की ओर प्रस्थान किया। पहाड़ी राज्यों की अव्यवस्था तथा सीमित युद्ध सामग्री के कारण इन राजपूतों ने सुगमता से अपने राज्य स्थापित किये। राव अञ्जुजदेव इन्हीं शासकों में से एक था जिसने कुनिहार पर कब्जा किया। इसी प्रकार काँगड़ा, सिरमौर, कहलूर, बाघल, कोटखाई आदि में अनेक राजपूत सांमन्तों ने मुस्लिम आक्रमणों, आपसी फूट तथा पराजय के कारण मैदानों से भागकर पहाड़ी क्षेत्रों में राज्य स्थापित किये। इनमें शक्तिशाली राजपूतों की एक शाखा परमार वंश के शासक राजा भोज की पीढ़ी के शासक १० वीं शताब्दि के लगभग सिरमौर के रास्ते बाघल रियासत में प्रविष्ट हुये जिन्होंने बाघल रियासत की नींव डाली।

बाघल रियासत की पृष्ठभूमि पर विचार किया जाये तो इसके अतीत से ही इसके राजनैतिक वैभव तथा बौद्धिक सम्पन्नता का सहज अनुमान लगता है। महाभारत के पश्चात यह क्षेत्र शिमला-सिरमौर की राज्य सीमा, कुणिन्द गणराज्य के अन्तर्गत ही रहा जिसमें वर्तमान नालागढ़ मांगल तथा कुनिहार भी सम्मिलित थे। कालान्तर में भारत पर वाह्य आक्रमणों के समय यह क्षेत्र छोटे-छोटे जनपदों में विभक्त हो चुका था।

अर्की राजवंश

बाघल के शासक राजा भोज (१०१०-१०६५) के उत्तराधिकारी थे। स्वतंत्रता प्राप्ति तक इस वंश की ३६ वीं पीढ़ी के शासक राजा राजेन्द्र सिंह थे। इस वंश की उपलब्ध वंशावली के अनुसार ३६ पीढ़ी पूर्व राजा सांरग राज्य करते थे जो परमार वंशी राजा भोज की पांचवी पीढ़ी के बाद आते है। राजा भोज की मृत्यु के पश्चात १३ वीं शताब्दी तक इस वंश का शासन धारा नगरी अथवा मालवा में रहा इसके पश्चात मुस्लिम आक्रमणों से पराजित तथा आतंकित इस वंश के चार भाई सिरमौर के रास्ते हिमाचल में प्रविष्ट हुए।

अर्की जनपद की जनश्रुतियों के अनुसार कहा जाता है कि इन चार भाईयों ने सम्भवतः बाहरवीं शताब्दी के लगभग चार विभिन्न राज्यों का शासन सम्भाला। सबसे बड़ा भाई सिरमौर जनपद, दूसरा भाई बघाट (सोलन), तीसरा भाई बाघल, तथा

चौथा भाई सेरीघाट (धारा वाला देव) जनपदों के शासक बने। सेरीघाट वाला भाई समीपवर्ती पेप्सू शासक क साथ युद्ध में वीर गति को प्राप्त हुआ। यह बहुत पराक्रमी तथा सदाचारी था। यह निःसन्तान था। छोटी आयु में मरने के कारण इसकी स्मृति में देव मन्दिर (केवल स्थल) का निर्माण किया गया सिरमौर वाला भाई भी निःसन्तान मर गया। बघाट वाले का वंश इस सदी तक वर्तमान रहा।

अर्की राज वंश राजा भोज की सांस्कृतिक धरोहर

अर्की राजवंश कौन्डीन ऋषि को अपना वंशज मानता है। कौन्डीन के कोई सन्तान नहीं थी। उन्होंने उज्जैन के समीप धारा नगरी के स्थान पर ऋषि विशिष्ट से यज्ञ करवाया। कहते हैं इस पुत्रेष्ठि यज्ञ में हवन के कुण्डों में हाथी की सूंड के समान घी की धारा ऋषि ने आहुति में डाली। इससे अग्नि देव बहुत प्रसन्न हुए। वे यज्ञ कुण्ड से प्रत्यक्ष हुए। कौन्डीन ऋषि ने पुत्र की याचना की। अग्नि ने कुन्ड से अपना अंश सोने की तरह रूप वाला पराक्रमी और दिव्य बालक उत्पन्न किया। कौन्डील ने उसकी जाति पूछी। अग्नि ने उत्तर दिया—'यह तेज रूप वाला, धर्म की रक्षा करने वाले सूर्य वंशी राजाओं की शक्ति से पैदा हुआ है'। अत यह पापी (पामर), अधर्मी पुरुषों को मारने वाला होगा इस लिए इसका नाम 'पंव र' होगा। यह पराक्रमी पुरुष उज्जैन के समीप कालिका (महाकाली) स्थान पर आया। वहीं उसने राज योग्य वस्तुओं को इक्कठा किया और उज्जैन राज्य की नींव डाली।

उसने अनेक दुष्टों को मारा और वहां का राज्य किया। (ऐतिहासिक अभिलेखों के अनुसार यह राजा उदयादित्य था) उसका लड़का जगदेव परमार (पंवार) हुआ जगदेव परमार चक्रवर्ती सम्राट था। वह काली का उपासक था। एक बार जगदेव ने अपने शौर्य के कारण एक भिखारी के लिये अपना सिर काट दिया था। काली माता की कृपा से उसका सिर लग गया था। वह त्यागी और प्रजाप्रेमी शासक था। जगदेव तलवार लेकर अपनी सेना सहित दिग्विजय करने निकला। उसने पहले दक्षिण में विजय प्राप्त की, फिर सिंहल द्वीप गया। वहां वह बहुत दिनों तक ठहरा। वहां से उज्जैन होता हुआ द्वारका आ पहुंचा। वहां अनेक तीर्थों में स्नान-दान करके कांचीपुर (मद्रास) गया। फिर मरु देश के राजाओं को जीत कर तथा उनसे भेंट (नजराना) प्राप्त कर उज्जैन वापिस आया। उसने ५२ वर्ष तक अच्छी प्रकार राज्य किया औ ८५ वर्ष की आयु में बड़े पुत्र जगधवल को राज्ल देकर स्वर्गवास किया।

जगदेव परमार की दिव्य शक्तियों, पराक्रम और दैविक व्यक्तित्व के कारण 'देव' का सम्मान मिल। लगता है 'धारा वाला देव' (सेरीघ ट) जगदेव परमार ही है। अर्की की संस्कृति में यह देव इतना घुल-मिल गया है कि इसे पितृ देव मानना अनोखा सा लगता है।

अर्की शासकों ने सर्व प्रथम किस स्थान पर अपनी राजधानी बनायी थी यह विषय बड़ा रोचक है। जनश्रुतियों में कहा जाता में कि गूंगा राणा नाम का एक शासक मुसलमानों के आक्रमणों से भयाक्रान्त अर्कीजनपद के गिरि-गह्वरों में छुपता रहा।

गूंगा राणा

बाघल के प्रथम शासकों में गूंगा राणा विख्यात है। दिल्ली के सिंहासन पर चूंकी मुगलों का अधिपत्य या इसलिये सामन्तों, अधिशासकों तथा छोटी-२ रियासतों के स्वामियों को यह अधिकार नहीं था कि वे अपने को राजा माने। गूंगा राणा की स्थिति भी कुछ ऐसी ही थी। वह प्रथम शासक है जिसकी स्मृति में बाणिया देवी का मन्दिर, अर्की में भूटरु में शिव मन्दिर, डुगली में उसके महलों के खण्डहर तथा दाड़ला में घोघर के स्थान पर उसके महलों के अवशेष आज भी मिलते हैं। डुगली में उसकी जुबान खुली थी ऐसा विश्वास यहां की जनश्रुतियों में पाया जाता है। यह राणा गूंगा था किंतु विद्वान तथा धार्मिक व्यक्ति था। इसने इस क्षेत्र में बहुत से मंदिरों बावड़ियों का निर्माण किया था। एक दन्त कथा के अनुसार जब कहलूर के राजा ने बाघल पर आक्रमण किया तो जोश के कारण उनकी जुबान खुल गयी थी। इसके राज्य की सीमाएं काली सेली (बिलासपुर) से लेकर जतोग (शिमला) तक और कुनिहार से मांगल तक फैली हुई थी। डुगली और घोघर के प चात इसने अपनी राजधानी धूंधन में निर्मित की जहां इसकी कई पीढ़ियां राज करती रही। दाड़ला घोघर से राजधानी बदलने का प्रसंग बड़ा रोचक है। कहते हैं इसकी राजधानी ऊंचे शिखर पर बसे दात्ती ग्राम से पानी की कूहल आती थी। गूंगा राणा के दरबार में विद्वान भाट था। उसकी योग्यता से प्रभावित होकर राजा ने उस का विवाह करने का बचन दिया। किसी दरबारी के परामर्श पर दात्ती ग्राम जहां दत्त ब्राह्मण रहते थे लड़की ब्याहने का निर्णय लिया गया।

इस ग्राम में चार भाई रहते थे जिनमें केवल एक के दो लड़के और एक लड़की थी। लड़की की आयु दस-बारह वर्ष की थी। राजा ने उसके बाप को दरबार में बुलाया दत्त ब्राह्मण लड़की को लेकर दरबार में उपस्थित हुआ। राजा ने लड़की की आयु देखकर विवाह से इन्कार कर दिया। ब्राह्मण पहले ही इस विजातीय सम्बन्ध से अपमानित अनुभव कर रहा था। उसने लड़की को टांगों से पकड़ कर एक बड़ी शिला पर पटका जिससे उसके प्राण पखेरू उड़ गये। उसने एक छुरा निकाल कर अपनी गर्दन पर मारा जिससे वह वहीं धराशायी हो गया। राजा यह देखकर आश्चर्य चकित हो गया जब दूसरे भाईयों को इस घटना का पता चला तो एक ने उसी क्षण एक ढांक से छलांग मारकर आत्म हत्या कर ली। दूसरे ने दाती के जलाशय पर तलवार से अपनी गर्दन काट दी जिससे राजा की कूहल का पानी लाल हो गया। जब राजा को इस घटना का पता चला तो उसने अपनी राजधानी दाड़ला से धूंधन बदलने का निर्णय लिया।

आज भी इस ग्राम के जलाशय पर उस ब्राह्मण पूर्वज की प्रस्तर मूर्ति तथा कन्या

की 'हत्या' की मूर्ति विद्यमान है। इस ऊंची घाटी से दाड़ला के ३५ गांवों को पेयजल की आपूर्ति होती है। गूंगा राणा ने उन ब्राह्मण भाईयों के बचे हुए एक पुत्र को दो-तीन ग्रामों की भूमि प्रायश्चित के रूप में दी थी जो आज भी इनके वंशजों के पास है।

कालान्तर में एक-दो पीढ़ी बाद तक राजवंश ने धून्दन क्षेत्र को अपनी राजधानी बनाये रखा। धून्दन में 'सती मंदिर' तथा बड़ूर खड्ड में 'हत्या' की मूर्ति आज भी उसी युग का इतिहास कहते हैं। कहते हैं कि धून्दन में राजा के एक रसईये ने जो मिश्र ब्राह्मण था, राज खानदान को किसी षडयन्त्र के कारण यज्ञ के अवसर पर भोजन में विष मिला दिया था।

राजा के दरबारी तांन्त्रिक अच्छूदेव ने जो काक भाषा के ज्ञाता थे, राजा को समय पर सचेत कर दिया जिससे राजपरिवार जीवित बच सका था। किन्तु महलों में राज कन्या को भोजन भेजा जा चुका था। देऊं (कन्या) ने विषाक्त भोजन कर भी लिया था, परिणाम स्वरूप वह मर गयी थी। उसकी स्मृति में 'बड़ूर खड्ड' में स्थापित 'हत्या' की मूर्ति के आगे कुछ वर्ष पूर्व तक राज वंश नतमस्तक होने आता रहा है।

इसके पश्चात १७०० ई० के लगभग राजा जगत सिंह ने राजधानी अर्की बनाई।

राजधानी अर्की

वर्तमान अर्की क महलों का निर्माण राजा कृष्ण सिंह पंवार को माना जाता है। वैसे प्राचीनकच्चे महल राजा जगत सिंह के बनाये बताये जाते हैं। राजा कृष्ण सिंह ने १८५७ के संग्राम में जतोग छावनी तथा कसौली छावनी में स्थानीय सिपाहियों के विद्रोह को दबाने में ब्रिटिश सरकार की मदद की थी, फल स्वरूप अंग्रेजी सरकार ने उन्हें सनद तथा 'राजा' की उपाधि से अलंकृत किया था।

अर्की राजमहल, किला तथा रंगमहल वास्तुकला की दृष्टि से हिमाचल में शीर्षस्थ स्थान रखते हैं। राजा कृष्ण सिंह ललित कलाओं का प्रमी था। उसने सारा जीवन महल निर्माण में ही लगा दिया। महल तथा किले की नींव तो जगत सिंह ने ही रख दी थी किन्तु वह गोरखों की लूटमार तथा समीपवर्ती रियासतों धामी, कुनिहार से युद्धों में उलझा रहा। अतः वह राज्य में अधिक कार्य नहीं कर पाया। कृष्ण सिंह एक कुशल प्रशासक तथा विद्वान राजा था। उसके दरबार में श्रेष्ठ चित्रकार, कवि ज्योतिषी तथा पण्डित रहते थे। उसने मुगल शैली पर दीवान खाना बनवाया। दीवान खाने के भित्ति चित्र उसके युग की मुंह बोलती तस्वीर है। इन भित्ति चित्रों में गवाक्षों तथा द्वारों पर फूलों की मनोहर चित्रकारी, हिन्दू देवी-देवताओं गणेश, शिव, रामचन्द्र, हनुमान, नारद परशुराम, सहस्रबाहु, वामन, राजा बल प्रह्लाद, नरसिंह, ब्रह्मा, कंस-कृष्ण, कालिय

दमन के चित्र तथा समकालीन चर्चित विषयों यथा चीन की दीवार, मुसलमान (मुगल) बादशाहों जहांगीर, शाहजहां, के चित्र, हाथियों का युद्ध, शेर के पास बैठी रानी, जयपुर का किला, बगीले बाग आदि के कलात्मक चित्र हैं।

काम सूत्र के चौरासी आसनों में से अनेक चित्र मानव अंगों की सूक्ष्मता स्पष्ट करते हैं।

इसके बाद राजा ध्यान सिंह (संवत १९६०) ने एक काष्ट किले का निर्माण किया था जो आज खण्डहर बन चुका है। अर्की राजमहल देश-देश के चित्रकारों के आकर्षण का केन्द्र बने हुये हैं।

अर्की नगरी

अर्की राजवंश सूर्यवंशी पंवार वंश से सम्बन्धित है अतः अर्की के प्रथम राजा ने 'अर्क' (सूर्य) के नाम पर अपनी राजधानी का नाम 'अर्की' रखा। सुरक्षा की दृष्टि से महल तथा किले का निर्माण एक ऊंचो विस्तृत चट्टान पर किया गया है जहां से बाघल क्षेत्र का अधिकांश भाग दृष्टिगोचर होता है। महलों के समीप ही 'शक्नी' (अश्किनी गंगा के नाम पर नामकरण) का अथाह जलस्रोत है जिससे सैंकड़ों गांवों की जल आपूर्ति होती है। इस अश्किनी गंगा के विषय में कई जनश्रुतियां इस क्षेत्र में प्रचलित हैं।

महलों के ऊपर लूटरु महादेव (रुद्र, रुद्रु, लूद्दु, लूटरु नाम साम्य) की आदि गुफा है। बीहड़ पहाड़ी के कारण किला तथा महल सदैव सुरक्षित रहे। गत २५० वर्षों में किसी आक्रमण द्वारा इसके जीतने का उल्लेख नहीं मिलता—महज राजवंश की अपनी पैतृक बीमारियों अथवा क्लीवता तथा अव्यवस्था के कारण गोरखों (१८०५ ई०) ने अवश्य रियासत में लूटमार की थी।

बाघल अभिधान

धारा नगरी (मालवा देश) से आये परमार वंशी इन राजाओं में बघेल खण्ड की मिट्टी की वीरता संस्कार-भावना में थी अतः इन्होंने रियासत का नामकरण 'बाघल' (बघेले वीरों से साम्य के कारण) किया। १९ वीं शती आते-आते यह रियासत १४ कोस चतुर्दिशाओं में फैली थी।

अर्की राजाओं का सैनिक संघर्ष उतना महत्व नहीं रखता जितनी इनकी सांस्कृतिक सम्पन्नता। महलों के अतिरिक्त अनेक मन्दिर, राजमार्ग, बावड़ियां इन द्वारा

निर्मित मिलती है। राजकीय स्तर पर ऋतु पर्व सायर मेला तथा दशहरा इनकी स्मृतियों को संजोये है।

अर्की के लोक देवों बाड़ा देव, बाडू बाड़ा, धारा वाला देव, माहूनाग, हरसंग, मंढोड देव, गणदेवता के उत्सव अनेक दन्त कथाओं के साथ राजाओं से जुड़े हैं। अर्की राजाओं की विद्वतप्रियता ही थी कि इन्होंने विद्वानों का एक गांव 'बातल' बसा लिया जहां अनेक ज्योतिषियों, गायकों, नर्तकों, रसोईयों तथा पण्डितों को भूमिदान देकर दरबार में भी सम्मान दिया।

यह अर्की जनता का सौभाग्य था कि भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति पर अर्की नरेश ने सर्वप्रथम अर्की रियासत को भारत गणराज्य में स्वेच्छा से अर्पित कर दिया।

●

भाषाध्यापक, राजकीय उच्च पाठशाला दाड़ला
जिला सोलन (हि० प्र०)

शिवरात्री पर्व पर गाए जाने वाले भक्ति गीत

—अमृत कुमार शर्मा

रियासत कुमार सैन में महा-शिवरात्री पर्व पर जो भक्ति गीत गाए जाते हैं उन्हें मुख्यतः तीन भागों में बांटा जाता है। प्रथम ब्रह्म भक्ति, यह भक्तिगीत राजपूत समाज में प्रचलित है, दूसरी ब्रह्मखाड़ा अर्थात अखाड़ा यह हरिजन समाज में तथा तीसरी आंचड़ीयां जोकि ब्राह्मणों में प्रचलित है। गीतों के बोल लगभग एक से हैं परन्तु उनमें भाषा और लय का अन्तर है। इन गीतों को सर्व प्रथम ब्राह्मणों ने लिखा व गाया। बाद में यह गीत सर्वसाधारण में प्रख्यात हो गए। ब्राह्मण का सीधा सम्बन्ध ब्रह्मा से बताया जाता है अतः राजपूत समाज ने इसे 'ब्रह्म भक्ति' (ब्राह्मणों की ब्रह्मा स्तुति) संज्ञा दी। इसी प्रकार हरिजन समाज में यह ब्रह्म भक्ति ब्राह्मणों की बुद्धि का श्रेष्ठ अखाणा बनी और 'ब्रह्म खाणा' संज्ञा दी, परन्तु अब इन गीतों को केवल 'आंचणी' गीत से ही, गाया व पुकारा जाता है जो संज्ञा ब्राह्मणों द्वारा दी गई है।

यह भक्ति गीत आंचणी महा शिवरात्री से एक माह पहले से शुरु होती हैं और शिवरात्री पर्व की शिवपूजा तक हर गांव में लोग इकट्ठे होकर एक-एक घर में बारी-बारी रात भर गाया करते हैं। गाते हुए दल दो भागों में बट जाते हैं। मूल पद दो बुजुर्ग गाते हैं जिन्हें पूर्ण गाया बाद है। दल के शेष सदस्य उसी पद को दोहराते हैं। वाद्य यन्त्र के रूप में ढोलकी और कांसे की थाली का प्रयोग होता है। दोनों दल आमने सामने खड़े होते है उनके बीच एक, दो या तीन व्यक्ति नाचते जाते है। उन्हीं गीतों की कुछ भक्ति रचनाएं प्रस्तुत करने का प्रयत्न कर रहा हूं। यह आंचणीयां मैंने एक पुरानी हस्तलिखित पुस्तक से ली है जोकि लगभग (२०१) दो सौ वर्ष पुरानी है। जो कुछ अभी तक पढ़ पाया है वह निम्न है :-

गणपति मंगल

दे गणेषो दोमोदरा,
हम पुत्र वर दे गणेशवरा। दे गणेषो . . .
तुम देव विनायक मूर्ति वला
तेरी शत्रु विद्धंसन कीर्ति सदा। दे गणेषो . . .
काने कुंडल झलके जटा मुकटा
तेरे लाड़ूए भोजन हस्ती मूखां। दे गणेषो . . .
तुम देओ विनायक सृष्टि मूखां
तेरी लक्ष्मी संगम कीर्ति सदा। दे गणेषो . . .

गरणपती गीत के बाद स्तुति की जाती है :-

२. स्तुति

स्तुति कारणे कारणे कारणेया,
जेबे शत्रु संधारने मारणेया ।
वर देश्रो बनायक सिद्धी भला,
मुख लाडूए भोजन पुत्रों फलां ।
कर कंगन केश जटा मुकटा,
हिए मने कुण्डल करती सोभां ।
चत्तार लक्ष्मी संग परम पदा,
श्राईए गावती मंगल करती सोभां ।
हम पुत्रों वर दे बनायका,
स्तुति कारणे-कारणे कारणेया ।

इस स्तुति के बाद ब्रह्मा, विष्णु और महेष के बटवारे का गीत :-

३. बटवारा गीत

ब्रह्मा, विष्णुश्रो, शिवो लागो बाडो . . .
जेठो ब्रह्मा, कन्नों विष्णु, कन्नी कन्नो हे सदा शिव,
ब्रह्मा विष्णुश्रो . . . .
बेदिया श्राणे चौऊ धुरिए राजे . . २ . .
राजा चौऊ धुरियों बाडा दे करी . . २ . .
मारे करी बाडा न श्रोश्रा . . २ . ।
बेदिया श्राणों इन्द्री राजो . . २ . .
राजा इन्द्रीयां बाडो दे कोरी, . . २ . .
मेरे बोले बाडा न श्रोश्रा . . ।
बेदिया श्राणे चन्द्र बाई सुरजा, . . २ . .
चन्दा सूरजा बाडो दे करी, . . २ . .
मारे बोले बाडा न श्रोश्रा . . ।
हेसदा शिबा बाडो दे करी-सदा शिवा . .
ब्राह्मो बाडे श्राश्रो वेद पुराणा . . २ . .
विष्णुए बाडे श्राश्रो चौऊ धुरिय राजा २ . .
श्रापु शिवा शभु डंवा ८ टीरे . .
श्रापु शिवे धुणी जगावी,
शिवे बाडे श्राश्रो भाग धतुरो . .
शिवे बाडे श्राश्रो भाग धतुरो . ।

बटवारे गीत के बाद शिव विवाह के अवसर पर पार्वती की 'सखियों से बातचीत' को गीत के रूप में गाया गाया एक स्वरूप जिसे धरलीला कहते हैं :-

धरलोला

शक्तिए गौरा देख महेष
हां-हां बृद्ध पुरुष मेरी बाली ब्रेस।
सकली विभूति जाए के शोभते अंग,
जटा मुखट सिरे धर ले गंग। शक्तिए ...
सकली विभूति जाएके धंवले केश,
बेल-बाण चढे तपसी को भेट। शक्तिए ...
काने मुद्र गले नाग शेस,
बृध पुरुष मेरी बाली ब्रेस। शक्तिए ...
भाई बाप जिन्ही करही राई,
बृध पुरुष आओ दिनी बहाई। शक्तिए ...

इस भक्ति गीत के बाद गणेष भक्ति गीत गाते हैं जिसे गौरी गणेष मंगलम कहते हैं।

५. गौरी गणेष मंगलम्

ओ स्वामी देव, देव गुणा,
देवा गणेश्वर गौरी के नन्दा। ओ स्वामी
गौरी के पुत्रा विनायक जाए,
हुन्दर कलिया गणेश्वर आयो। ओ स्वामी
हुन्दर कलियां मटकी हारी,
काने कुन्डल मुकट जटा धारी। ओ स्वामी
विध्न हरण बहु मंगल करणा,
सुर नर सृष्टि सेवा तेरी करणा। ओ स्वामी
मस्ती निधि बहु मंगल करणा,
सुरीनर सिद्धि सेवा तेरी करणा। ओ स्वामी

६. रागनिकाल गौरी (छन्द)।

कि गौरिए सञ्झां जे पड़ी बुलहस्तमी,
घर-घर पाकी बियाड़
माणू चाले सोया घर आपणे,
पंछी सोबे डाल हा।
एक गोरिए के सात बेटे जमे,

सातों निकले चोर ।
दुई धौए ले, दुई पिऊलै,
सो इक तीतर दुई मोर हा ।
गौरी जे पूछे गोरियां,
कोण फलाणा देश
सुखिए को घर आपणा,
दुखिए को परदेस ।
सझां जो पड़ी बृखहस्तमी,
घर-घर पाक्की रसोई,
निर्धन के घर पावणे,
सो नैन भर-भर रोए ।

इसे छन्द की तरह गाया जाता है इस के अतिरिक्त प्रत्येक गाँव में एक माह तक लोग विभिन्न प्रकार के भक्ति गीत गाते हैं परन्तु इन सभी गीतों को वर्तमान प्रचलित भाषा में 'आंचणीयां' ही कहा जाता है ।

कोटेश्वर कृपा निवास, गांव व डा० किंगल
जिला शिमला (हि० प्र०)

प्राचीन जातियों का शरणास्थल हिमाचल प्रदेश

—केशव चन्द्र

ऐतिहासिक सर्वेक्षणों ने यह सिद्ध किया है कि भारत में बहुत प्राचीन काल से अनेकों जातियां निवास करती रही हैं जिनमें से कुछ तो आर्यों से भी पुरानी हैं। यह आम मान्यता है कि आर्य भारत में मध्य एशिया या भूमध्य सागर की ओर से आये। आर्येतर जातियां भी भारत में बाहर से आई व यथा आवश्यकता एक या दूसरे क्षेत्र में बसती रहीं या फिर इधर उधर के निरापद क्षेत्रों की ओर निकलती रहीं। एक दूसरे का आमना सामना होने पर कभी उनमें युद्ध हुए तो कभी वे एक दूसरे में अंतर्भुक्त हो गईं। आर्यों के भारत आ जाने पर जातीय युद्धों व जातीय समन्वय की प्रक्रिया तेज हो गई। इसी दौर में अनेक जातियों ने अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए दूर पर्वतीय क्षेत्रों आर्य प्रदेशों की पहुंच से बाहर के बीहड़ों व घने जंगलों में शरण ली। प्राचीन जातियों के लिये हिमाचल का दुर्गम पहाड़ी क्षेत्र भी बहुत निरापद सिद्ध हुआ। इसी लिये आज भी यहां कई जातियों व उनके अवशेषों को चिन्हा या पहचाना जा सकता है।

प्राचीन जातियों के बारे में जानकारी प्राप्त करने के सूत्र चूंकि आर्यों के प्राचीन ग्रन्थों यथा वेद, पुराण, उपनिषद व दर्शनादि में प्राप्त होते हैं अतः आर्यों की चर्चा इस प्रकार के लेखन में अपरिहार्य है अन्यथा यहां पर किसी जातीय संघर्ष को दर्शाना या उसका वर्णन करना विषय नहीं है। इन्हीं प्राचीन ग्रंथों से हमारे इतिहास के विशेषज्ञों धर्माधिकारी कोसाम्बी, राहुल सांस्कृत्यायन, काशीनाथ, जायसवाल, रांगेय राघव, ताराचन्द, इर्फान हबीब, भगवत शरण उपाध्याय एच० डी० सांकलिया, राम बिलास शर्मा व ए० निजामी आदि ने वे सूत्र ढूंढे जिनसे भारत में बसने वाली जातियों का काफी स्पष्ट व तथ्य मूलक ब्योरा मिलता है। कई विदेशी विद्वानों ने भी इस विषय पर गहरी खोजबीन की है।

इतिहास के विशेषज्ञों की खोजों से पता चलता है कि प्राचीन काल में आर्य (देव व सुर) द्राविड़, (दानव व असुर) किरात, (यक्ष, गंधर्व, किन्नर) राक्षस, नाग, गरुड़, बानर, रिक्ष, पिशाच पणिय व भील आदि जातियां भारत के अन्योन्य क्षेत्रों में रहती थीं। आर्यों के इन जातियों के साथ अनेकों युद्ध हुए। इन जातियों में से कुछ ने आर्यों की आधीनता स्वीकार कर ली कुछ ने स्वैच्छिक अंतर्भुक्ति समन्वय का मार्ग अपनाया और कुछ ने निरापद स्थानों में जाकर रहना उपयुक्त समझा। जो जातियां दूरनिरापद स्थानों में जा बसीं वे अपनी पहचान बनाये रखने के लिये अभीतक सुरक्षित हैं।

आर्यों की आधीनता स्वीकार करने वाली व उनके करीबी सम्पर्क में रहने वाली जातियों

धीरे-धीरे आर्य जीवन पद्धति को अंगीकार कर लिया जिसका अगला रूप वर्ण-व्यवस्था हो गया। आर्येतर जातियों के पुरोहितों (पूजा सम्पन्न करवाने वालों) गण-मुखियाओं व योद्धाओं को तो प्रथम तीन वर्णों - ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्यों में आत्म सात कर लिया गया जबकि आम जनों को शूद्रों का वर्ण स्वीकार करना पड़ा। यह क्रम हजारों वर्षों तक चलता रहा।

आर्यों ने चूंकि मैदानों व उपजाऊ क्षेत्रों में अपने आपको व्यवस्थित कर लिया, उन्हें योया वर पशुपालक बन कर चलते रहने की अधिक आवश्यकता नहीं रही। वे गांधार (अफगानिस्तान) से लेकर पाटलीपुत्र (बिहार) तक के क्षेत्र में फैल गये। उन्होंने सुरक्षा व व्यवस्था के लिये राजतंत्रों की स्थापना कर ली। उनके पास युद्धों अंतर्भुक्ति (समन्वय) के परिणाम स्वरूप पर्याप्त दास (शूद्र) हो गये अत- दूर पहाड़ों, बीहड़ों व घने जंगली क्षेत्रों के लोगों से न कोई अधिक भय रहा न उनको हराने की अधिक आवश्यकता रही। अतः इस प्रकार की आर्येतर जातियां अपने सीमित जीवन यापन के साधनों-आखेट, थोड़ी बहुत खेती-बाड़ी व दस्तकारी द्वारा अपना अस्तित्व बनाये रख सके। फिर भी कभी-कभी शक्तिशाली आर्यों से आमना सामना हो ही जाता था और इन जातियों को जन-धन की काफी हानि उठानी पड़ती थी।

जो प्राचीन जातियां हिमाचल प्रदेश के क्षेत्र में आ बसीं अथवा पहले से ही यहां थी उनकों आर्यों के साथ अधिक युद्ध नहीं करने पड़े। आर्यों ने भी लम्बे अर्से तक इधर का रूख नहीं किया प्राचीन काल के एक मात्र युद्ध का वर्णन ऋग्वेद में मिलता है। आर्य राजा दिवोदास ने किरात राजा शम्बर से युद्ध किया था जो कई वर्ष तक चला था और जिसमें किरातों की हार हुई थी। इस हार के कारण किरातों के हाथ से पंजाब के साथ लगने वाले मैदानी व उपजाऊ क्षेत्र निकल गये और उनको हिमाचल के और भीतरी क्षेत्रों में शरण लेनी पड़ी। इस युद्ध के बाद फिर किसी आर्य-किरात युद्ध का वर्णन नहीं मिलता।

पांडवों के बनवास काल में हिडम्ब राक्षस व भीम के युद्ध का महाभारत में वर्णन मिलता है परन्तु यह युद्ध न होकर दो योद्धाओं के बीच का द्वंद्व युद्ध था जिसमें हिडम्ब मारा गया था। जाति के तौर पर तो यहां पर समन्वय का प्रमाण मिलता है। हिडम्ब की राक्षसी बहन हिडम्बा ने आर्य भीम से विवाह कर लिया था। हिडम्बा मनाली की रहने वाली थी जहां पर आज तक उसका मन्दिर अवस्थित है।

महाभारत काल तक तो आर्य व आर्येतर जातियों में मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित हो गये थे जिसका प्रमाण इस बात मिलता है कि महाभारत के युद्ध में कौरवों और पांडवों दोनों ने ही अनेक आर्य भिन्न जातियों को अपने पक्ष की ओर से लड़ने के लिए बुलाया था। हिमाचल के क्षेत्र से कौरवों के पक्ष में लड़ने के लिये रत्न यक्ष के जाने का विवरण है जिसे श्री कृष्ण ने छल से रास्ते में ही मरवा दिया था।

महा भारत के युद्ध के बाद तो हिमाचल में आर्यों के राजा बनने के हवाले भी हैं जैसे कि

श्री कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न के किन्नर प्रदेश का राजा बनने का हवाला है। इस से स्पष्ट होता है कि उस काल में पहाड़ी जातियों को आर्यों की अच्छी जानकारी हो गई थी, सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण हो गए थे फिर भी वे शांति से रह सकें इसलिए उनको राज पद देने लगे थे।

हिमाचल में प्राचीन जातियों के अस्तित्व मान होने की छानबीन प्रसिद्ध विद्वान व इतिहासज्ञ राहुल सांकृत्यायन ने की है और उन्होंने यहां पर किरातों व किन्नरों को पहचाना है। उनका मत है कि कांगड़ा जिला के घीरथ प्राचीन काल के किरातों के वंशज हैं और किन्नौर के लोग प्राचीन किन्नर जाति से हैं। एक अन्य प्रसिद्ध इतिहास वेता रांगेय राघव के अनुसार किन्नर किरात जाति की ही एक शाखा है। यक्ष व गंधर्वों की मूल जाति भी वे किरात जाति को ही मानते हैं। कांगड़ा में घीरथ जाति आज भी बहुसंख्यक है जबकि किन्नौर में तो सभी किन्नर जाति के ही लोग हैं। यक्ष लोग भी हिमाचल प्रदेश में रहे हैं इसके भी कई प्रमाण मौजूद हैं। आज तक भी अनेकों स्थानों के नाम यक्षों से जुड़े हुये हैं। मण्डी जिला की चच्योट तहसील में माघोपुर गढ़ नाम का एक बहुत पुराना किला है जो लगभग दस हजार फीट की ऊंचाई पर स्थित है। यह विश्वास है कि यह किला यक्षों ने बनाया था। इसी प्रकार सोलन जिला के अन्तर्गत मण्डी-शिमला मार्ग पर स्थित गांव को यक्ष राजा सहस्रबाहु की राजधानी बताया जाता है। महाभारत के युद्ध में लड़ने के लिए जाने वाला योद्धा रत्न यक्ष भी यक्ष जाति से था। रत्न यक्ष का स्थान चच्योट तहसील की पहाड़ी चोटी कमराह पर है।

यक्षों के हिमाचल में होने का एक लोक प्रमाण यह भी है कि यहां पर सुन्दर व मन मोहिनी यक्षणियों की कई लोक-कथाएं प्रचलित हैं। परन्तु अलग जाति के रूप में इसका अस्तित्व नजर नहीं आता। जैसा कि रांगेय राघव का कथन है कि यक्ष, किन्नर व गंधर्व तीनों ही किरात जाति के अंग हैं अतः हो सकता है कि यक्ष यहां पर किन्नरों में किरातों (घीरथों) में समा गये हों। यह भी हो सकता है कि यक्ष नागों में अंतर्भुक्त हो गये हों क्योंकि रत्न यक्ष की कमरू नाग के रूप में आज तक पूजा होती है और उसे नाग देव माना जाता है।

यक्षों से सम्बन्ध देवता या देवस्थान कोई हिमाचल में है इसकी खोज करने की आवश्यकता है।

देवताओं व देवस्थानों के माध्यम से जिस पुरानी जाति के यहां रहने के प्रमाण प्रचुर मात्रा में प्राप्त होते हैं वह है नाग जाति। नागदेवों के मंदिर मण्डी, बिलासपुर, शिमला व अन्य जिलों में पाये जाते हैं। प्रचलित विश्वास के अनुसार नाग जाति को सांपों की जाति माना जाता है और नाग देवों को एक या दूसरी लोक कथा, चर्चा में सांप ही ठहराया गया है यद्यपि उनके जन्म, कुटुम्ब उनके मुखिया या राजा होने के प्रमाण भी दंत कथाओं में मौजूद हैं। आज भी यह सरल प्रस्थापना मानने के लिए कहा जाता है कि चमत्कारी अथवा दिव्य शक्ति द्वारा आदमी पशु या पक्षी बन जाता था और पशु-पक्षी मनुष्य बन जाते थे। कि प्राचीन काल में सांप, पक्षी, शेर सभी

बातें करते थे - ठीक आदमी की तरह। परन्तु यह बात भ्रामक है। इतिहासकारों के मतानुसार नाग जाति भी मनुष्यों की एक प्राचीन जाति है। अर्जुन का एक विवाह नाग कन्या उलपि से जो हुआ था। उलपि कोई सर्पिणी नहीं थी वह सशरीर एक सुन्दर लड़की थी अन्यथा सर्पिणी से एक मनुष्य के विवाह का क्या अर्थ।

हिमाचल प्रदेश में नाग जाति के अवशेष अभी तक मौजूद हैं कांगड़ा व अन्य स्थानों में ब्राह्मणों में नाग मिलते हैं। नाग देवताओं की पूजा से भी यही स्पष्ट होता है कि नाग जाति के लोगों को यहां ऊंचे दर्जे का स्थान प्राप्त था और कहीं-कहीं वे सत्ता सीन भी थे। इसीलिये शायद वे आर्यों में अंगीभूत हो गये।

वैसे नाग जाति के लोगों का हिमाचल में आना संयोग ही है क्योंकि नाग जाति का सम्बन्ध जल से अधिक माना जाता है अर्थात यह जाति अपनी जीविका व यातायात के लिये नदियों व जल मार्गों का प्रयोग करती थी। परन्तु चूंकी प्राचीन काल की कई जातियां औजारों व हथियारों को विकसित नहीं कर पाई थी इसलिए जिन जातियों ने इन साधनों का अधिक विकास कर लिया उन्होंने धरती और सत्ता को प्राप्त कर लिया। शेष जातियां अस्तित्व रक्षा के लिये यहां-वहां बिखर गई। नागों के गरूड़ों के साथ खूनी संघर्ष हुये अतः इस जाति के लोग इस प्रकार के युद्धों में जब बच गये तो निरापद स्थानों में जा पहुंचे। अन्य जातियों की तरह उनको हिमाचल प्रदेश में भी शरण मिली।

किरात, किन्नर, यक्ष, नाग जातियों के अतिरिक्त आर्य जाति के लोग भी हिमाचल में आ बसे। आर्यों के यहां पर होने के प्रमाण पेश करने की तो आवश्यकता ही नहीं है। इसके तो अनेकों ही प्रमाण हैं और सबसे बड़ा प्रमाण है यहां पर आज तक आर्य वर्णों की उपस्थिति। राक्षस भी यहां रहे होगें क्योंकि हिडम्ब को राक्षस ही माना गया है परन्तु हिडम्ब परिवार के अलावा किसी अन्य का हलावा कहीं उपलब्ध नहीं है और वैसे भी राक्षसों का अस्तित्व दक्षिण भारत में ही रहा जहां से उनका हिमाचल की ओर आना तर्क संगत नहीं लगता। अतः हो सकता है कि हिडम्ब भी यक्ष यानी किरात ही रहा हो।

उपर्युक्त प्राचीन जातियों के अलावा एक अन्य जाति जिसे यहां चिन्हा जा सकता है वह है मोन-ख्मेर। लाहौल व किन्नौर क्षेत्रों के कुछ लोग इस जाति से हैं। नृवंश शास्त्री इस जाति को मंगोलियाई जाति कहते हैं।

इन प्राचीन जातियों के अतिरिक्त यहां किसी अन्य जाति के आने व होने के प्रमाण उपलब्ध नहीं होते यथा वानर, रीछ, गरूड़, पिशाच, राक्षस, द्राविड़ (दानव व असुर)। इन जातियों का सम्भवतः इसलिए इस ओर आना नहीं हुआ क्योंकि ये जातियां भारत के दक्षिण की ओर ही केंद्रित हो गई क्योंकि आर्यों के क्षेत्रों से होकर इधर आना निरापद नहीं था।

चूंकि प्राचीन जातियों में से कइयों के नाम पशु व पक्षियों से सम्बद्ध हैं अतः समय बीतने के साथ जब इन जातियों का युद्धों में विनाश हो जाने, शक्तिशाली जातियों में अंतर्भुक्ति हो जाने या नई जीवन पद्धति (वर्ण-व्यवस्था) अपना लेने से रुपांतरण हो गया तो इससे उनके प्राचीन स्वरूप के बारे में भ्रम पैदा होना आरम्भ हो गया इसीलिये आज यह समझा जाता है कि ये जातियां मनुष्यों की नहीं बल्कि चमत्कारी व दिव्य शक्तियों वाले पशु पक्षियों की थी। इतिहासकाल के पंचतंत्र कथा साहित्य ने इस प्रक्रिया को और बढ़ाया। परन्तु सच्चाई यह है जिसे कि इतिहासज्ञों ने ढूंढा कि पशु-पक्षियों के नामों वाली जातियां टोटेम जातियां थी। लगभग सभी प्राचीन जातियां किसी पशु, पक्षी,पेड़ या अन्य वस्तु को पूजनीय मानती थी यथा नाग जाति सांपों को, गरूड़ जाति गरूड़ को यक्ष जाति पीपल के पेड़ को, वानर जाति बन्दर व रीक्ष जाति रीछ के टोटेम को मानती थी। इन टोटेमों की वे पूजा करती थी। अंतर्भुक्ति से जब एक जाति का लोप हो गया तो सिर्फ टोटेम पूजा शेष रह गई जिसको अंतर्भुक्ति (दूसरी जाति में मिलने) के बाद भी उसने जारी रखा। तभी आज हम देखते हैं कि हमारे यहां सांप की पूजा होती है श्वान पूजा होती है, मूषक पूजा होती है उल्लूक व गरुड़ को पवित्र माना जाता है पीपल के पेड़ और चैत्य को पूजा जाता है, यह सब जातिय विलय और समन्वय का परिणाम है।

भौगोलिक स्थिति के कारण हिमाचल प्रदेश को यह गौरव प्राप्त है कि इसने अपने सुरक्षित व निरापद क्षेत्र होने की वजह से प्राचीन काल की कुछ विशिष्ट जातियों के अस्तित्व को आजतक बनाये रखने में मदद की तभी इतिहास के विद्वानों को उन प्राचीन जातियों (यक्ष, किन्नर) किरात, नाग व आर्यों को पहचानने में कठिनाई नहीं हुई।

प्राचीन जातियों के शरणस्थल हिमाचल को यह भी गौरव प्राप्त है कि यहां पर आदिकाल से ही विभिन्न जातियों ने मिल-जुलकर रहना सीख लिया प्रत्युत वे एक दूसरे में मिल भी गईं।

प्राचीन जातियों के अलावा हिमाचल प्रदेश में इतिहास काल की भी अनेक जातियां हैं जिन्हें इतिहासकारों ने चिन्हा, पहचाना है। उन जातियों की चर्चा अन्य लेख में करेंगे।

●

१९७/१० थनेहड़ा मुहला
मंडी (हि० प्र०)

सिरमौरी लोकसाहित्य में वीर रस की प्रधानता

—गीता शर्मा

वर्तमान हिमाचल प्रदेश के लोगों को प्राय: शांतिप्रिय लोगों के नाम से जाना जाता है किन्तु इसके कुछ क्षेत्र जैसे कांगड़ा और सिरमौर इसके अपवाद हैं। इसमें सिरमौर निवासियों के आक्रमक, विद्रोही व निडर होने के कारण विशेष हैं।

ऐतिहासिक एवं भौगोलिक पृष्ट भूमि

सिरमौर जनसाहित्य में वीर रस की प्रधानता का मुख्या कारण यहाँ की भौगोलिक स्थिति व जातियों की वंशपरम्परा के प्रति अटूट विश्वास तथा उसको बनाये रखने की प्रवृत्ति रही है। ऐतिहासिक दृष्टि से यहां के निवासी प्राचीन आर्य जाति खश तथा नवागन्तुक राजपूत जातियां हैं जो मुसलमानों से हार कर या डर कर इस क्षेत्र में बस गये व यहां के निवासियों से संघर्ष करके जनमुख्या बन गये। आज भी यहां के अधिकतर निवासी खश हैं जिन्हें जनगणना में कनैत के तौर पर अंकित किया गया है किन्तु वे फिर भी अपने आपको खश कहते हैं। ये खशों के कबीले प्राय: आपस में युद्धरत रहे जिसका मुख्य कारण योग्य भूमि पर अधिकार करना था। एक समय यहां की जनश्रुतियों के अनुसार खश राज था। खश कई कबीलों में बटें थे जिन्हें खेल कहा जाता था।

यहां का लिखित इतिहास ११वीं शताब्दी के बाद प्रकाश में आता है। हेमिल्टन के अनुसार यहां के प्राचीन राजा जो सिरमौर की राजधानी सिरमौरी ताल के गरक के समय (११८३) था वह राठौर वंश का था। यहां का नया जंमलमैर राजवंश की स्थापना ११६५ ई० में हुई।

यहां लोग प्राय: अपने आप को कौरव (साठी) और पाण्डव (पाशी) के साथ जोड़ते हैं। इन दोनों का आपस में सदियों संघर्ष, युद्ध तथा विरोध रहा है जो किसी न किसी रूप में अब तक भी सीमित अवस्था में विद्यमान है। इनका आपस में विवाह व मेल मिलाप नहीं होता था। प्रत्येक वर्ग ने अपना अधिकार क्षेत्र चुन लिया जिसमें बसने वाले या तो इसी वंशज के होते या जो उसमें रहता उसे उनकी अधिनता और सर्वश्रेष्ठता स्वीकार करनी पड़नी थी। साठी का क्षेत्र पाशी के लिए वर्जित क्षेत्र था। ये कबीले परस्पर लड़ते, कटते तथा एट दूसरे की स्त्रियां उठाकर ले जाते पर अन्याय या हत्या की अपील राजा के दरबार में न ले जाकर सिर का बदला सिर, ईंट का जवाब पत्थर देने के सिद्धान्त पर अटल विश्वास रखते।

एक समय ऐसा आया जबकि बाहरी आक्रमण परस्परिक शत्रुता, इतनी बढ़ गयी कि जनजीवन खतरे में पड़ गया। अकेला व्यक्ति यात्रा करने से घबराता था। रात्रि के समय घर से बाहर निकलना खतरे से खाली नहीं था अतः जनजीवन व ग्राम खतरे से बचाने के लिए ग्राम के चारों ओर पत्थरों की पक्की, मोटी व ऊंची सी दीवार (जंगी) बना दी गयी। एक सुशक्त प्रवेश द्वार लगाया गया जिसे रात्रि के समय बन्द कर दिया जाता था। मन्दिर का निर्माण इस ढंग से हुआ ताकि वे मन्दिरों के साथ रक्षा का काम भी दे सके। मन्दिर को इतना ऊंचा बनाया गया कि आसपास के क्षेत्र पर दृष्टि रखी जा सके। उसमें ऐसे आलों (सुराखों) को रखा गया जो अन्दर से चौड़े किन्तु बाहर से सांकरे हो तो उसमें बैठकर शत्रु पर बाण या गोली चलाई जा सके किन्तु स्वयं शत्रु की मार से सुरक्षित रहे। मन्दिर के भण्डार में तलवारें, डागरे, बन्दूकें तथा बाणों का संग्रह किया जाने लगा मन्दिर हिन्दू देव तथा देवियों के स्थान स्थानीय महापुरुषों ने ले लिया। लोग हाट तथा सामूहिक कार्य इक्कठे शस्त्र सहित एक टोली में जाते ताकि अपनी रक्षा कर सके।

ज्यों ज्यों कबीले बढ़ते गये, नये नये भूमि क्षेत्रों की आवश्यकता अनुभव होने लगी। दूसरे कबीले के क्षेत्र में इस शर्त पर भूमि मिल जाति कि उनकी आधीनता (मोड़ या गुमास्ता) स्वीकार कर ले किंतु आत्मस्वाभीमान होने के कारण लोग युद्ध द्वारा भूमि की प्राप्त करना अधिक सम्मानित कार्य समझते अतः युद्ध चलते रहे, गांव उजड़ते और बसते रहे अन्ततः कई स्थानों में जाने के बाद लोग स्थायी रूप से आज के स्थान में जाकर बसे।

इस समय यहां पर बाहर से आये राजपूतों ने इन्हें अधीन करना आरम्भ कर दिया। यहां राणाओं व रावतों का राज शुरू हुआ अब लोगों का सघर्ष इन राणाओं के साथ भी शुरू हुआ। लादी के राणा को लुधियाना भगा दिया गया, मेहल के राणे से पतोग छीन लिया गया चान्दपुर के रावत को मिल्ला वालों ने मार दिया व पालर का राणा स्वयं अपनी मौत मर गया।

अभी इन राणाओं से पुरी तरह छुटकार, नहीं मिला था कि सिरमौर में राजवंश बड़े गहरी और लोगों पर राजा की पकड़ सुदृढ़ होने लगी। राजा वजीरों गोलदारों (राज कर्मचारी जो जो कर एकत्रित करते तथा पुलिस के कार्य भी करते) द्वारा शासन चलाता। ये अधिकांश भ्रष्ट, रिश्वतखोर तथा चरित्रहीन थे अतः लादी के वजीर के विरुद्ध लादी के २७ गांव मुख्या (सियाणा) ने आवाज उठाई और कोटी बीच में उसकी हत्या कर दी गयी।

राजा स्वयं लोगों की ओर कम ध्यान देते थे। कर्मचारियों के भ्रष्ट ढंग व कार्य का लोगों ने विरोध किया। जिसमे होकू सिया का विद्रोह, पालवी के चोतुरु सियाणे अछ्वु व प्रितम का भूमिकर कम करने के लिए चलाया गया असहयोग आन्दोलन व पझोता आन्दोलन जिसमें लोगों की इच्छा का आदर करना व स्वच्छ तथा ईमानदारी का प्रशासन ढंग की मांग करना शामिल थी।

लोग जानते थे कि उनका संघर्ष लम्बा और कड़ा है अतः लोग अपने नवयुवकों को प्रशिक्षण

देते ताकि उनमें संघर्ष की भावना भर जाये। प्रत्येक गांव में शाम के समय या खाली दिनों में (तोल) भार उठाने की प्रतियोगिता, जिसमें लकड़ी तोल उठाना, शहतीर उठाना, छत के पत्थर उठाने, रस्सा तोड़ना, बाजुबल प्रतियोगिताएं, कुश्ती लड़ना, तीर अन्दाजी का अभ्यास करना आदि शामिल था। शत्रु को मारने या हानि पहुंचाने वाले व्यक्ति का हीरो जैसा स्वागत होता था। शत्रु पर विजय का जश्न बड़े धूमधाम से मनाया जाता। ऐसे अवसर पर दाईचारे (भाईचारे के लोग) माश (माशो की सीड़ों) का स्वादिष्ट भोजन बनाते।

भौगोलिक दृष्टि से १८१४ ई० पूर्व सिरमौर रियासत एक बड़ी रियासतों में से मानी जाती थी। इसकी सीमाएं पूर्व में गंगा या हरकीपोड़ी से पश्चिम में सतुलज नदी तक उत्तर में रामपुर बुशहर रियासत तक दक्षिण में नारायण गढ़, रामगढ़ मोरनीहिल और पिंजौर क्षेत्र भी शामिल थे। भीतरी पर्वतीय क्षेत्र व रियासतों के मार्ग पड़ने के कारण यह भीतरी पर्वतीय क्षेत्र का प्रवेश द्वार था। साथ ही इसकी सीमाएं उत्तरी भारत के मैदान से मिलती थी। यहां पर प्रायः दिल्ली सल्तनत के विद्रोही शरण लिया करते थे जिससे सिरमौर के दिल्ली सल्तनत के साथ इसके अच्छे सम्बन्ध नहीं रहे। क्योंकि इसका क्षेत्र विस्तृत था। अतः अपनी सीमाओं की रक्षा व पड़ोसी राज्यों को सहायता करने वृति ने इसे अनेकों लगातार युद्धों की लपेट में ले लिया। फलस्वरूप सिरमौर रियासत श्रीनगर (गढवाल) हिन्डूर (नालागढ) कोहलूर (बिलासपुर) जुणगा रामपुर बुशैहर तथा सिख रियासतों के साथ समय-समय पर युद्धात रहा। क्योंकि उस समय राजा की नियमित सेना नहीं होती थी। अतः सिरमौर के नौजवानों को राजा की सेना में लड़ने व वीरता दिखाने का अवसर मिलता।

यदि इस प्रकार ऐतिहासिक तथा भौगोलिक पृष्ठभूमि हो तो लोक साहित्य पर भी उसका प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता यही कारण है कि जन साहित्य पर वीर रस की प्रधानता रही है जो पीढ़ी दर पीढ़ी अविरलधारा के रूप में बहती रही। जब अन्य श्रृंगार रस, करुण रस आदि से सम्बन्धी जन साहित्य का अधिकांश भाग भूला दिया गया या समय के अन्तराल गर्त में खो गया है। वीर रस साहित्य जिन्दा है और अधिक मात्रा में विद्यमान है।

कथा तथा गाथाओं में वीर रस की अधिकता है। 'गुगापीर का वार' गुगापीर की वीरता का वर्णन है कि उसने कैसे देवता शिरगुल की मदद की। 'इदरोल' मेंशिरगुल देवता ने कैसे अपने अनुयायियों को दानव से बचाया की गाथा है। 'राम रावण युद्ध' की गाथा राम लक्ष्मण तथा हनुमान की वीरता का सुन्दर वर्णन है। अर्जुन, भीम तथा बालाबावरी (अभिमन्यु) के भारोत (युद्ध आख्यान) में अर्जुन, भीम तथा अभिमन्यु की वीरता का हृदयस्पर्शी तथा सुन्दर वर्णन मिलता है। एक स्थान पर अर्जुन कहता है :

तादा हां दुर्योधनो रोई न डोरी,
वाली ओसो द्रोपदो, बाबे पांडु री बोरी।

तेरे से दुर्योधन में नहीं डरता, द्रोपदी तो मेरे पिता पाण्डु ने बरी थी इसे तो लेकर रहूंगा। पाण्डवों के गीत में एक अन्य वर्णन आता है :

कुणे जीती द्रोपदी नारो,
पांडुवे जीती द्रोपदी नारो ।

कुणे खेली कुले छेतरो रोजपूती मारो,
पांडुवे खेली कुले छेतरो रोजपूती मारो ।

किसने द्रोपदी को जीता, किसने कुरुक्षेत्र में वीरता का युद्ध लड़ा—पाण्डवों ने, पाण्डवों ने।

पुआड़े-पुआड़े जैसे 'शिलाउड़ी बोवाल' 'जीतागजोण' में वीर रस की प्रधानता है। आरम्भ से अन्त तक युद्ध वर्णन है। 'जीतागजोण' में वीर जीता और गजोण को धोखे से उसके शत्रु भुंगु और पुइनु मार देते हैं पर जीता गजण की बहिन अपने भाइयों का बदला लेती है।

छीछा एक साका गीत है जिसमें छीछा का बदला उसका भाई रेणु शिला बड़ा ग्राम जला कर लेता है जिन्होंने उसके भाई छीछा की हत्या की थी। जगदेव के साके में सगड़ाह सियाणा साठी ग्राम फुकवा कर पाशी (पाण्डव) की शान बढ़ाता है।

दुइने गाणे चेतिरु, ऐक बेने घाटी,
रोणु वे फुको पाशोई, जगदेव शाठी।

दोनों चोतरु सियाणों में कोई भी घट नहीं था। रोणु न पाशी ग्राम जलवाया तो जगदेव ने साठी का।

नोतराम, होकू तथा मिया सिधु, सेण का सामा ताजा जगताब गाथाओं आदि में वीर रस को समुचित स्थान दिया गया है।

नन्तराम ने गुलाम कादिर रोहिला के विरुद्ध सिरमौर सेनाओं का कुशल नेतृत्व किया जिसके फलस्वरुप दिल्ली के विजेता को सिरमौर की भूमि पर हार का सामना करना पड़ा। इस युद्ध का वर्णन इस प्रकार हैं।

फोउजो चाली नोतीराम, जेशणा गुड़िकू गुड़ा,
पाखा चुड़ा फोउजी रा, शेरो शा गुड़ा ।
नेगी तादी नोतराम राजपूती आई,
काटीवा थोई मुगला री ढेरी सोजाई ।
नेगी री चालो तोलवारो, बिचली री मारो,
बिना धाई वोईरी, ऐक बेने छाड़ो ।

नन्तराम की फौज ऐसे तेज चली जैसे मेघ गरज रहा हो। नन्तराम मुगल की सेना पर ऐसा टूटा जैसा बकरी पर शेर। नन्तराम में राजपूती जोश आया और मुगल सिपाहियों के काट कर ढर लगा दिए। तेरी तलवार नन्तराम बिजली की तरह चली, बिना घायल किए तूने किसी दुश्मन को नहीं छोड़ा।

होकू के गीत में जब होकू की सेना नाहन चोगान में पहुंची तो उस समय का वर्णन कुछ ऐसे है जबकि उसकी बन्दूकों की गर्जन से सारा नाहन थरथरा गया।

एथ लागा बुलिदा सियाणा जुवाला,
मारे मोरणा मिया, बिचो चुगानो दा मुहला।
तेरे आगणे मिया होकूवा वाशो कुकिड़ा चांम्बी,
मोहाला होआ चुगानो, वाडी नोइणो कांम्बी।

सिबु की टीकरी से कुछ शब्दांश इस प्रकार हैं :

दुइने बोइशे भाइटे, देउठी मूले,
भीतीरो शे छाड़ी लुए, शोरी रे पूले।
जाइ बेने राजिया, नोइणी रा हिला,
आपी खे साजो मुए टीकरी, लोहे रा किला।

दोनों भाई मन्दिर में बैठकर अंदर से राजा की सेना पर बाणों की बौछार करने लगे। राजा तू नाहन का घमण्ड न कर। मेरी भी लोहगढ़ से कम नहीं है।

सेरु का सामा गाथा में सामा देलू मेहता (वजीर) को चुनौती देते हुए कहता है :

जेवी आइला पोखो खे, वाइडा गाड़ू चुनालु,
तू बी दोलु मोता, हा सामा चुनालू,
आडिड़ा बागटा पाडिड़ो चुली,
जेते तेरे चाकीरो, तेते मेरे कोली।

अगर तू युद्ध को आयेगा तो तेरा कलेजा बाहर निकाल दूंगा। अगर तू भी दोलू मेहता (वजीर) है तो मैं भी कम नहीं मैं सेरु का सामा हूं। जितनी तेरी फौज है उतने तो मेरे कोली (नौकर) हैं।

यहां के लोग प्रिय युद्ध गीत (हारुल) में दुनियां की हारुल, ठुडु की हारुल व विणी की हारुल मुख्य हैं।

दुनियां की हारुल की कुछ पंक्तियां इस प्रकार है :

धारो पोरो शी देई लोईली शिलाईयो विधाग्रो,
छैलटें थोये कारी ग्रामे, उबे बांडे खे ग्राग्रो ।

शिलाई के दो बालकों को काट कर गांव वालों को आवाज लगाते हैं कि हमने दो बकरे काटे हैं। उनके मांस का हिस्सा लेने आ जाओ।

ठुंडु की हारुल में हामलनिवासी (जुब्बल चोपाल) ने कामराऊ निवासियों से बदला लेने के लिए सेना लेकर कामराऊ आये जहां उन्होंने सियाणा जगदेव को मार कर बदला लिया।

फुलो लो फुलीट्टु, डाली फुलो ली दाई,
इथियो लाणी ठुंडु डागिरे, उबा वोदू ने ग्राई।
पोख चालो ठुंडु ऐ उड़ो ली माटी,
सीदी कोरणी जोगदेवा, डागरे खे टाटी।

बूढ़ा जगदेव सियाणा अपने शत्रुओं ठुंडु से कहता है इससे आगे मैं नहीं चल सकता अतः मुझे यहीं काट दो। बदले में ठुंडु कहता है कि तू मरने के लिए तैयार होकर अपनी गर्दन डागरे के वार के लिए सीधी कर ले।

बाणी की हारुल में विणी की तलवार तथा उसके घमण्ड का वर्णन इस प्रकार है।

बुले मेरे सावगिग्रा, चोनी का विणी रा खाड़ा,
खोश कारीणा कोमराउ, गिरोग्रो दा पांडा।
पाणीरी गिरोई घोणा, बुग्रालिता खांडा,

बोलो मेरे सिपाहियो मेरी तलवार कैसे चमक रही है? खश कमराउ को भगाकर गिरी नदी से पार करना है और मैं गिरी नदी के पानी से अपनी लहू लूहान तलवार धोऊंगा।

नृत्य गीतों में रासा यहां का प्रसिद्ध नृत्य है जिसमें प्रायः वीर रस के गाने गाये जाते हैं जिसे 'भिड़कनों वाले गीत' अर्थात उछल कुद वाले गीत कहा जाता है। इसमें केवल आदमी भाग लेते हैं जो मस्त होकर नाचते हैं। गीतों की लय तथा ढोल की आवाज तेज तथा उत्तेजक होती है। 'नृत्य गीत में बुदा' जिसमें युद्ध का वर्णन है भी आता है।

'नाटी' में नौजवानों व बूढ़ों को वीररस पूर्ण गीत अधिक भाते हैं जिसका आनन्द खाजारी घड़े, ढोलक तथा हाथ की तालियों की आवाज से भी प्रभावशाली बन जाता है। पैर स्वयं थिरकने लग जाते हैं।

इस क्षेत्र के वीर रस गीतों तथा युद्धप्रियता का प्रभाव मेलों और उतसवों पर भी पड़ा है। भोण मेला तो एक प्रकार युद्ध अभ्यास तथा शक्ति प्रदर्शन की प्रदर्शनी है जिसमें एक कबीले के लोग दूसरे को चुनौती देते हैं। इसे स्वीकार करके प्रतिपक्ष के लोग बन्दूक, तलवार, डागरा व लाठी लेकर केवल नौजवान ही इस मेले में शामिल होते हैं। बिशु के मेले में 'ठोडा' (तीर अन्दाजी) का प्रचलित होना तथा दिवाली त्यौहार में हूश या डा (जलती हुई लकड़ी के मसाल) आदि को लेकर चलना, अश्लील नारों का प्रयोग करना भी युद्ध तथा झगड़ालु प्रबृति प्रदर्शित होती है। इनके श्रम गीतों में भी वीर रस की बहुलता है जो थकान को कम करने व काम करने के उत्साह में बृद्धि करते हैं।

ये वीर रस से भरपुर गीत, गाथाएं, नृत्य वर्ष भर किसी न किसी अवसर पर गाये जाते हैं तथा इनकी विशेषता यह है कि ये बैठकर, नाचकर तथा काम करते समय भी गाये जा सकते हैं।

०–०–०

MIG-16 हाऊसिंग बोर्ड कालोनी, नाहन
जिला सिरमौर (हि०प्र०)

'दुर्गा अष्टमी के पुण्य अवसर पर'

देवी हाटेश्वरी की भेंट

—पन्ना लाल जोगटा

देवधरा हिमाचल प्राचीनकाल से ही ऋषि-मुनियों की तपोवन भूमि रही है। अतः भारत के इस भू-भाग में देवताओं के मन्दिरों का प्राधान्य तो है ही, इनकी कर्मठता तथा पराक्रम का अनुसरण करते हेतु हर शुभ कार्य का आरम्भ करने से पहले लोग अपने ईष्ट देव की पूर्णतया मान्यता करते रहे हैं तथा इसी क्रम में छोटे-छोटे ग्रामों से लेकर बड़े-बड़े शहरों तक देवी-देवताओं के मन्दिरों का निर्माण किया गया है। इस पृष्ठ-भूमि में लोगों की धार्मिक प्रवृति की ओर प्रायः ध्यान आकर्षित रहा है। अधिक मन्दिर होने पर भी प्रत्येक मन्दिर की विविधता, महत्व तथा इतिहास प्रायः एक-दूसरे से भिन्न हैं।

देवी हाटेश्वरी का मन्दिर शिमला जिला के सुदूर जुब्बल तहसील में हाटकोटी नामक स्थान पर है जो शिमला से लगभग १२० किलोमीटर की दूरी पर जुब्बल तथा रोहड़ के मध्य में स्थित है। वैसे तो इस क्षेत्र में दो-तीन किलोमीटर की परिधी में बहुत से मन्दिर हैं परन्तु इस मन्दिर का विशेषकर ऊपरी महासू क्षेत्र में एक विशिष्ट स्थान है। अनुश्रुति है कि हाटेश्वरी देवी का मंदिर पांडवों ने बनवाया था। देवी के मुख्य द्वार पर अंकित विचित्र भाषा अभी भी अपाठ्य है। ऊपरी महासू के किसी भी देवी-देवता का वर्णन करते समय हाटेश्वरी देवी का सन्दर्भ अवश्य ही आता है। इससे इस देवी के महत्व एवं वैभव का प्रमाण मिलता है। जैसे कि देवी की अधोलिखित भेंट से झलक मिलती है देवी हाटेश्वरी कांगड़ा देवी की सहोदर है। भेंट में कांगड़ा पर मुगल सेना के आक्रमण का भी वर्णन आता है अतः इस भेंट का धार्मिक महत्व होने के साथ-साथ ऐतिहासिक महत्व भी है।

इस पवित्र स्थान पर वर्ष में दो बार मैला लगता है, प्रथम चैत्र मास की दुर्गा अष्टमी तथा अन्य असौज मास में नवरात्रों के शुभारम्भ पर। इन दिनों लोग दूर-दूर से इस स्थान पर आकर बच्चों का मुण्डन-संस्कार करते हैं तथा माता हाटेश्वरी के दर्शन करके आशीर्वाद प्राप्त करते हैं।

क्योंकि भेंट की भाषा सरल है अतः इसका हिन्दी अनुवाद नहीं किया गया है तथा माता की भेंट लोक-भाषा में मूलरूप में उधृत है :-

पहला नाम्रों लाऊं माता-पिता रो, दूजो लाऊं माहमायीया तेरो।
चौजो नाम्रों लाऊं रासा धणी रो, जीणे चाणों पुतलो मेरो।
पांजवो नाम्रों लाऊं सदाशिवा रो, जिणे दिणो धतरे बसेरो।
कास रूपा माईया पैदा हुए, कास रूपा माणु पुवाणा।

कास रूपा माईया धतरे धाए, कास रूपा धाए दिणा दाना।
विष्णु रूपा हों परगट हुए, ब्रम्हा रूपा माणु पुवाणा।
शिवा रूपा गोंए धतरे धाए, सिंगा रूपा धाए दिणा दाना।
राच-विहाणे माईया झूला मूलिया, कुकडूग्रा दिणे ठणकारा।

खाड़ो जा मेरेग्रा भोजगी बाम्णा, माता रे परौला धुम्राड़ा।
राच विहाणे माईया झूला मूलिया, गावेग्रा बाशटु परोलो।
खाड़ा जा मेरेग्रा भोजगी बाम्णा, काण्डा जाणी कथरा खरोलो।
खड़ो जा भोजगी बाम्णा, तू जाणो सूतो की मुंग्रा।

माता रो हुम्रो शनाना रो वष्ता, पाणे कागा पांखरुग्रा छुंग्रा।
नंईदे चालगे धूंइदे माईया, हाथाकियो खड़के रो खाण्डो।
दिली रो मुगला जोधा ख ग्रायगो, ग्राधो मांगा कांगड़ो रो बाडों।
धन ता धन तेरो किलो कांगड़ो, धन तेरा माथा दे बिंदे।

दिल्ली रो मुगला जोधा खे ग्राम्रो, हारा नहीं कांगड़ा दींदे।
धन-ता-धन तेरो मांदरा देविया, धन तेरा भग्रणा द ताला।
दिल्ली रो मुगला जोधा खे ग्राम्रो, किलो सारो कांगड़ा रो हाला।
खड़ा जा मेरेग्रा नारसिहां भोंरुग्रा, बाटे पड़ा ग्रदमी जाए।

फतीहा सिहां रो फौजा ग्राए, थोड़े-धणे देखे ग्राशा शाए।
फतीहा सिहां रो फौजा माईया, ग्राशे गोए भूसा पराला।
ग्रागा रा माणू माईया पाणे पिया, पछा क टपा न गारा।
खड़ो जा लांकड़ा बीरा, बाटा पड़ा ग्रोदमी जाए।

फतीहा सिह रे फौजा ग्राए तींया तू देखी ग्राशा शाए।
ग्रोर फूल माईया दिन-दिन फूला ला, बारहा महीना फूला भरमेले।

लांकड़ो बीरा माईया-मौंशों मांगा, श्रापू मांगा माहमायीया छेले ।
धन-ता-धन तेरो किलो कांगड़ो, धन तेरो लांकड़ो बीरा ।
धन-ता-धन तेरो मांदरा देवीया, शाठा मणा छतरा फीरा ।
एक देवे बसे किला कांगड़ा, दूजे बसे हाट बजारा ।
बाई सनागणा काना दे कुंडला, गला पाश्रो गलमोतिया हारा ।
धन-ता-धन तेरो मांदरा देवीया, धनतेरो महणा हाटा ।
चीन कटालू पैरा बोंदा, पूजा करा नामटो भाटा ।

●

निदेशालय उद्यान विभाग, हिमाचल प्रदेश
नौ-बहार, शिमला - २

भह्यात का सर्व पूजनीय तथा

चम्बा राज्य कुल द्वारा सम्मानित देवता--नाग मंढोर

—धर्म चन्द कौशल

भह्यात के सर्व विख्यात देवता नाग मंढोर का विशाल एवं मन मोहक मन्दिर चुआड़ी तहसील हैड क्वाटर व बस स्टैंड से लगभग दो किलोमीटर दूर ग्राम कुठेड़ में स्थित है। यह मन्दिर प्राचीनकाल से राणाओं एवं जनता द्वारा निर्मित किया गया है। इसके भीतर एक बड़ी काले रंग की शिला है जिसके ऊपर देवता का चिन्ह अंकित है। तथा और भी भारी संख्या में त्रिशूले व चिन्ह भक्तों द्वारा भेंट स्वरूप चढ़ाये गए हैं।

मदिन्र के आगे विशाल मैदान है तथा पुराने समय के बृक्ष हैं। नाग देवता के साथ ही उनकी बहन हिडम्बा देवी का प्राचीन मन्दिर है वहां भी पत्थर की शिला स्थापित है। मन्दिर पहले देवदार बृक्ष के तख्तों से छाया हुआ था जोकि कैंथली के लोगों द्वारा धर्मारथ लाए गए थे, तथा राज्य द्वारा कीमत के वगैर दिए जाते थे। परन्तु अब मन्दिर कमेटी व पंचायत चुआड़ी के सहयोग से मन्दिरों पर स्लेट डाले गए हैं। मन्दिर को अधिक सुन्दर बनाने का कार्य चल रहा है। भादो शुद्धी राधा अष्टमी को यहां रात के समय (जागरा) का आयोजन किया जाता है। रात्रि को भारी संख्या में नाग भक्त वहां पहुंचकर लाभान्वित होते हैं। रात को मन्दिर में पूजा-पाठ, हवन आदि का क्रम चलता है, उसके पश्चात चेला नचाया जाता है। शंख, तुहरी, नक्कारा, बन्सरी, भाणा और थाली बजाए जाते हैं। चेला बहुत ही तीव्र गति से काफी देर नाचता रहता है एक नया समांवन्ध जाता है उसके पश्चात चेला रात्रि के गहन अन्धकार में चाहे मुसलाधार मेह बरस रहा हो अकेला बगैर साथ व रोशनी के अपने कनिष्ठ बन्धु नाग सुण्डल से जो की मन्दिर से लगभग ७-८ किलोमीटर दूर चढ़ाई चढ़कर भयंकर मार्ग से बैंसियों के सर पर सरसों रखकर तथा आशीर्वाद देकर चला जाता है।

मन्दिर के पास ही एक सिम्बल का विशाल बृक्ष है, चेला जब वहां पहुंचता है उसे नाग के बाहन द्वारा तीन बार धक्के देकर पीछे धकेला जाता है, चेला उसे बली देने की प्रतिज्ञा करके हाथ में त्रिशूल और कुछ सोगलिया लेकर अन्धकार में लोप हो जाता है। जब तक चेला वापस लौटकर नहीं आता (बैंसियों) द्वारा लगातार साज बजते रहते हैं और राग भी बदलता रहता है। जब चेला निर्दिष्ट स्थानों पर पहुंचता है और चिन्ह

रूप में पुष्प व सोगलिया रखता है, बैंसियों के सर से स्वतः सरसों गिरने लगती है। वह समझ जाते हैं कि चेला इस समय फलां स्थान पर पहुंचगया है। उस रात्रि को जिस मार्ग से चेला जाता है, कोई व्यक्ति उसे नहीं देखता, देखने पर कई बार अनिष्ठ हो जाता है। अगर बैंसी पीछे बाजा बन्द कर दे या गलत बजाए तो चेला राह से भटक जाता है और वापस नहीं आ सकता ऐसी धारणा की जाती है।

जनश्रुति है, कि एक बार बैंसियों को अच्छा खाना न मिलने पर उन्होंने साज बन्द कर दिए। चेला रात्रि को चलता-चलता चम्बा पुल के पास पहुंच गया, शितला माता ने चपत लगाकर कहा कि कहां जा रहे हो तुम्हारा मन्दिर कहां है। चेला वहाँ से लौटा और बाद में बैंसियों की शिकायत राजा से की। बैंसियों ने अपनी खाने की कठिनता राजा जी को बताई राजा की ओर से नाम देवता को भोग व कार्यकर्त्ताओं की खुराक के लिए धानी जमीन शासन में दी गई जोकि अब भी है।

चेला अपनी निशानियां रखता हुआ फेर ग्राम से वापस दूसरे रास्ते से आता है. निशानियां दूसरे दिन प्रातः किसी सरकारी कर्मचारी द्वारा लाई जाती हैं। अगर चेला ऐसे ही चला आवे तो उसे मान्यता प्राप्त नहीं होती। चेला आकर काफी देर नाचता रहता है इतना सफर करने पर भी किञ्चित थकान महसूस नहीं करता है। अपनी यात्रा का विवरण देने के साथ दुःखी बिमारों को जोकि देवता या मन्त्रों द्वारा दुःखीत हो, उन्हें उसकी चिकित्सा बताता है। कई बार मन की बातों को भी नाग कृपा से बता देता है।

इस भौतिक युग में भी जन साधारण नाग देवता की शक्ति व चमत्कार को देख कर दंग रह जाते है तथा श्रद्धा से मस्तक झुक जाता है। इसके पश्चात लगातार सात दिन तक जातरें (मेले) चले रहते हैं। तीसरी जातर को नाग मंढोर का कनिष्ठ बन्धू नाग विणतरु मिलने आता है जोकि जलूस की शकल में प्रयूगल गांव से पुजारियों द्वारा वाद्य ध्वनि में सामान सहित मंढोर पहुंचता है। मार्ग में श्रद्धालु मल नाग की पूजा करते हैं। प्रोन पर दोनों नागों के चेले प्यार से गले मिलते हैं तथा लाया हुआ सामान जोकि बहुमुल्य होता है मन्दिर में सजाया जाता है। मन्दिर की शोभा और भी बढ़ जाती है। प्रातः सायं नाग देवता की आरती की जाती शंख व वाद्य यन्त्रों से वहां का शांत वातावरण जय घोष के शब्दों के साथ गूंज उठता है। सारा दिन मोर पंख या चादर हिलाई जाती है। ४-५ बजे शाम को दोनों चेले इकट्ठे नाचते हैं उस समय वाद्य यन्त्र जोर से बजाए जाते हैं तथा काली नाग मंढोर में दोधिया नाग विषतरु की जयकार की जाती है, वर्षा की अवश्यकता पर वर्षा व अधिक वर्षा होने पर उसे बन्द करने की मनौती मनाई जाती है। नाग देवता की कृपा से कई बार वर्षा समय पर हो जाती है। किसान अपनी फसल समय पर लगा लेते हैं। यही इस नाग में सदियों से चमत्कार रहा है। इलाका के लोगों में इसी कारण नाग देवता के प्रति श्रद्धा रही है। जोकि आज भी प्रत्यक्ष रूप में देखी जाती है।

पुराने समय में राज आज्ञा से मदिन्र में वाद्य यन्त्रों सहित जातर लेकर एक जलूस की शक्ल में कामपार जाते थे, उसी प्रकार आज भी रायपुर होवार चुआड़ी की पंचायत द्वारा मेले में जातर देने की प्रथा जारी है भहयात के गाँव-गांव से लोग तथा व्यापारी व सरकारी कर्मचारी श्रद्धा से मन्दिर में जाकर अपनी श्रद्धा के पुष्प नाग देवता को अर्पण करते हैं। गांव से सज धज कर आए हुए महिलाएं पुरुष अपने लोक गीत नृत्य से मनोरंजन के द्वारा अपनी वर्ष भर की थकान उतारते हैं तथा दुकानों से मिठाई व अन्य सामान खरीदकर घर ले जाते हैं। इस प्रकार सात दिन तक नाग देवता के मन्दिर में चहल पहल लगी रहती है। गांव कुठेड़ के निवासी क्रमशः दोनों नागों के कार्यकर्त्ताओं को सात दिन भोजन कराते रहते हैं और दोनों समय वहां के ब्राह्मण पुजारी नाग देवता की पूजा करते रहते है। सातवें दिन नाग त्रिषतरु वापस चला जाता है। तथा मंढोर नाग का चेला आठवें दिन मानी हुई भैंसे की बलि नाग के वाहन को देकर मैले का विसर्जन करके कीमती सामान नाग को घर लाकर एक बड़ा भण्डारा करता है हरवर्ष इसी प्रकार मेलों का आयोजन चलता रहता है। तहसीलदार महोदय भहयात द्वारा शांति बनाये रखने की गर्ज से मेले का पूर्ण प्रबन्ध किया जाता है। नाग देवता के मन्दिर में प्रायः प्रतिदिन श्रद्धालु भक्त जाते रहते हैं तथा मनौती पूर्ण होने पर जातरों या आगे पीछे मनौती की भेंट चढ़ाते रहते हैं। यहां मंदिर में आकर पुरानी संस्कृति सभ्यता का साक्षात्कार होता है। यह मंदिर हमारी प्राचीन संस्कृति के सम्बन्धित हैं। इस परम्परा को जीवित रखना सब का भूल कर्त्तव्य है। नाग देवता की और भी बहुत सी चमत्कारी घटनाएं हैं विस्तारमय से जिनका जिक्र यहां न कर सका। नाग देवता के चरणों में शतर प्रणाम वह सबको सुबुद्धि सुख शांति प्रदान करे।

गांव व डा० रायपुर तै० भहयात
जिला चम्बा (हि० प्र०)

कांगड़ा घाटी में गूगा छत्री

—रत्न लाल चौधरी

मेरे इस लेख का मूलाधार नाथ साहित्य है। यह लोक साहित्य पर आधारित है। किताबी साहित्य तो पढ़े लिखे लोगों का साहित्य होता है परन्तु लोक-साहित्य जन-जन का साहित्य होता है रूढ़ियाँ एवं किवदन्तियां इसे थामे रखती हैं। हमारा प्राचीन स हित्य वेदों में ही मिलता है और वह भी ब्रह्मा द्वारा लिखे हुए बताए जाते हैं जोकि छः हजार वर्ष से अधिक पुराने नहीं बताए जाते हैं। वेदों पर ब्राह्मणों का ही अधिकार था तथा कर्मकाण्ड एवं प्रायश्चित विधान इतना जटिल होता गया कि आम आदमी के वश की बात नहीं रह गई। फलस्वरूप बुद्ध द्वारा बौद्ध धर्म का प्रादुर्भाव हुआ। कालान्तर में बौद्ध मठ भोग विलास के अड्डे बनने लगे फलस्वरूप अनुयायी अनेक शाखाओं में विभक्त हो गये। एक शाखा सिद्ध कहलाई यह चौरासी सिद्ध हुए। इनका उल्लेख चौरासी वैष्णव की वार्ता में मिलता है। सिद्धों में भी अनेक प्रकार की विकृतियां आ गई पंच, मकार, सहज साधना, नीच स्त्री गमन, कुण्डलिनी जागरण आदि सिद्धान्त थे। आगे चलकर मच्छेन्द्र नाथ हुए जोकि स्त्री गमन में फंसकर साधना को भूल गए। इनके शिष्य गोरखनाथ हुए यह मच्छेन्द्र नाथ के शिष्य बताए जाते हैं इन्होंने अपने गुरु का उद्धार किया। गोरखनाथ ही नाथ-संप्रदाय के संस्थापक माने जाते हैं। यह जन्त्र मन्त्र में विश्वास रखते थे निर्गुण वाद थे। शंकर के अद्वैत वाद 'अहम् ब्रह्मास्मि' का भी इन पर प्रभाव है। सन्त परम्परा भी सिद्ध व नाथ परम्परा पर ही आधारित है।

नाथों के भारतीय साहित्य को दूर तक प्रभावित किया है। आज भी नाथ सम्प्रदाय भारत के अनेक भागों में फैला हुआ है। इन्हें जोगी अथवा नाथ से अभिहित किया जाता है। मृत्यु होने पर इन्हें जलाया नहीं जाता है अपितु दफन किया जाता है। कोहड़ी एवं गूगा की गाथा बड़े तन्मय होकर गाते हैं। जादू टोने का इलाज करते हैं। गूगा छत्री के मन्दिर कांगड़ा जिला में ही नहीं अपितु हिमाचल के अनेक भागों में स्थापित हैं। परन्तु कांगड़ा में इसकी मान्यता जिस प्रकार है पाठकों की सेवा में प्रस्तुत कर रहा हूं। गूगा छत्री की कथा बड़ी ही रोचक एवं चमत्कार पूर्ण है। गूगा छत्री को सांप के जहर तथा जादू टोनों के निवारण का प्रतीक माना जाता है। मन्दिर में इतवार को पूजा की विशेष व्यवस्था होती है। जादू टोने से ग्रस्त स्त्रियां व पुरुष चौबीस घंटों मन्दिर की परिक्रमा करते हैं। सांप के जहर से ग्रस्त लोग भी ऐसा ही करते हैं। प्रसाद के नाम पर मिट्टी एवं जल दिया जाता है। जिससे पीड़ित लोगों को उल्टियां आती हैं जिससे खिलाया हुआ जादू या धागा उल्टी के साथ बाहिर आ जाता है। पीड़ित लोगों को मन्दिर के 'धूप' की गन्ध से ही 'खेल'

श्रोने लगती है। पीड़ित स्वयं ही अपनी बिमारी का हाल बताने लगता है तथा जादू खिलाने वाले का नाम भी बताता है। कांगड़ा में यूं तो गूगा छत्री के अनेक मन्दिर हैं। परन्तु पालमपुर तहसील में सलोह नामक स्थान पर एक भव्य मन्दिर है। यह मन्दिर पालमपुर से ८ किलोमीटर दूर पठान कोट रोड पर अरला नामक गांव से सलोह नामक गांव को सड़क द्वारा जोड़ता है। हर वर्ष गूगा नौमी पर यहां भारी मेला लगता है। यह मेला ६ दिन चलता है। कृष्ण जन्म अष्टमी के अगले दिन गूगा नौमी मनाई जाती है श्रद्धालु अधिकांश अन्न की भेंट ही चढ़ाते हैं जिसे श्रोरा' कहा जाता है।

स्थानीय लोगों के अतिरिक्त प्रदेश एवं अन्य प्रदेशों के लोग भी यहां आते हैं। सांप का का काटा व्यक्ति आज तक यहां मृत्यु को प्राप्त नहीं हुआ है। कहते हैं एक बार एक व्यक्ति को विशैले सांप ने काट लिया वह दौड़ा हुआ मन्दिर को जा रहा था। मन्दिर के पास ही दो रास्ते हो जाते थे (अब सड़क बन गई है) एक रास्ते पर एक युवक नीले घोड़े पर बैठा हुआ मिला उसने पिड़ित व्यक्ति को अन्य रास्ता बता दिया। अभी वह थोड़ी ही दूर गया था कि उसे अन्य व्यक्ति मिला जिसने दूसरा रास्ता बताया। पीड़ित व्यक्ति ने नीले घोड़े वाले व्यक्ति से वार्तालाप का विवरण दिया तथा उसकी मृत्यु हो गई। नीले घोड़े वाला व्यक्ति स्वयं यमराज बताया जाता है। क्योंकि मृत्यु उस व्यक्ति का पीछा कर रही थी। मन्दिर में पहुँचते ही दो शक्तियों का द्वन्द हो जाता है।

गूगा छत्री की कहानी बड़ी रोचक है। यह कहानी किसी पुस्तक में प्रकाशित हुई नहीं मिलेगी। यह किवदन्तियों पर आधारित है। कहते है कि किसी राजा की दो रानियां थीं। काच्छलां तथा दूसरी का नाम बाच्छलां था। उनके कोई सन्तान नहीं थी। इधर राज्य में बारह वर्ष तक कोई वर्षा नहीं हुई। बाग-बगीचे एवं तालाब सूख गए। राज्य में हा-हाकार मच गई। इसी बीच गुरू गोरखनाथ अपनी नौ लाख शिष्यों की सेना के साथ उस राज्य में पधारे। बड़ी रानी धर्म-कर्म जानने वाली तथा साधु सन्तों की सेवा किया करती थी। उसने अपने सूखे बाग में गुरू को ठहरने की प्रार्थना की। इधर गुरू की कृपा से वर्षा के साथ ओले गिरने लगे नंगे शिष्यों की ओलों से खाल उतरने लगी तथा सर्दी से ठिठुरने लगे। गुरू ने आदेश दिया की ओलों के ढेर लगाए जाएं। गुरू ने अपनी धूनी से आग अपने हाथ पर उठाई और फूंक मारते ही सब धूनियां जल उठीं। इतने में शिष्यों को भूख लगी तो गुरू ने उन्हें महलों में भिक्षा मांगने को भेजा। रानी ने सबको सोने की अशरफियों की भिक्षा दी परन्तु इससे भूख तो मिटाई नहीं जा सकती थी। अन्त में गुरू जी स्वयं उठकर गए। उन्होंने अपनी तुम्बी रख दी रानी ने सारा कोष तुम्बी में डाल दिया परन्तु तुम्बी तो भरने का नाम ही नहीं लेती थी। अन्त में गुरू ने आटे की चुटकी लाने को कहा। आटा पड़ते ही तुम्बी भर गई तथा राजकोष का सारा धन राजकोष में आगया। राज्य में हरियाली छाने लगी १२वर्ष के ठूंठ भी हरे हो गए। बड़ी रानी प्रतिदिन गुरू की सेवा करने के लिए बाग में जाने लगी। उसकी इच्छा सन्तान का वर पाने की थी। इधर छोटी रानी को भी सारा पता था। जिस दिन गुरू ने उसे बरदान देना था उस दिन प्रातः ही छोटी रानी ने बड़ी रानी से कपड़े मांगे कि मुझे मन्दिर जाना है मेरे कपड़े मैले हैं। मैं अभी वापिस आकर लौटा दूंगी। भोली-भाली रानी ने कपड़े दे दिये। छोटी

रानी घुंघट निकाल कर गुरु की सेवा में हाजिर हो गई। तथा धोखे से वरदान पा गई। जब बड़ी रानी गुरु के समक्ष गई तो गुरु ने सोचा कि यह लालच में आकर फिर कोई नया वरदान मांगने आई है। गुरु ने अपनी गदा धरती पर मारी और पाताल लोक को प्रस्थान किया। रानी हत-प्रभ आरती लिये खड़ी रही। वह समझ गई कि मुझसे भूल हो गया है परन्तु वह उस स्थान से हटी नहीं कई दिनों तक ऐसे ही खड़ी रोती रही। सूख कर कांटा हो गई। बाम्बी ने उसके शरीर को जकड़ लिया। कौए उसका मांस नोचने के लिये आने लगे तो वह कौओं से कहती कि :

सब तन खायो कागा चुन-चुन खायो मांस,
इक दो नेना न खायो गुरु मिलन की आस।

इधर जब उसके आंसू धरती पर गिरते तो अंगारे बनकर पाताल लोक में गुरु के आसन को जलाने लगे। गुरु एक ओर से आग बुझाते तो दूसरी ओर लग जाती। अन्ततः गुरु अन्तर्धान हुए तो पता लगा कि उन की एक शिष्या से धोखा हो गया है।

गुरु गोरखनाथ जी ने आकर देखा तो एक हड्डियों का पंजर खड़ा है। उसके आंसू आग की वर्षा कर रहे हैं। गुरुजी ने उसके शरीर से बाम्बी हटाई तथा रानी को कहा कि मेरी झोली में हाथ डालकर जो कुछ भी मिले उसे निकाल ला। रानी को झोली में से एक धूप की गठिया मिली। गुरुजी ने कहा कि नहा धो कर इस धूप को आग पर रखना इसके धुएं से तुम्हें एक पुत्र एवं एक पुत्री का जन्म होगा। घर में बांधी नीलों घोड़ी के एक घोड़ा पैदा होगा जोकि तुम्हारे पुत्र का आजीवन साथी होगा। पुत्र का नाम गुगा छत्री होगा जोकि बहुत ही पराक्रमी होगा तथा देवयोनि को प्राप्त होगा। छोटी रानी को शाप दिया कि उसके यहां पराक्रम हीन सन्तान होगी। वरदान के अनुसार रानी गर्भवती हुई। छोटी रानी अनेक प्रकार के षड्यन्त्र रचने लगी इससे डर कर बड़ी रानी मायके चली। एक बैलगाड़ी पर बैठकर रानी एक जंगल से जा रही थी कि छोटी रानी ने वासुकी नाग की सहायता मांगी तथा कहा कि उसके रथ के बैल को डस लिया जाए ताकि रानी जंगल में ही तड़फ कर मर जाए। वासुकी नाग ने क्षुद्र रूप धारण कर धोलू घास में छिप गया। बैल ने ज्योंहि घास को मुंह मारा त्यों ही उसे डस लिया गया बैल मर गया रानी लाचार होकर विलाप करने लगी। उसी समय उसके गर्भ से उसे आवाज आई कि मां चिन्ता न कर अपनी एड़ी को धरती पर घुमा दे वहां से पानी निकलेगा उस पानी एवं मिट्टी को बैल के मुंह पर लगा दे बैल जीवित हो जाएगा। रानी ने ऐसा ही किया। बैल जीवित होगया। मायके पहुँचते ही उसे प्रसव पीड़ा हुई तथा एक पुत्र व एक पुत्री को जन्म दिया। कहते हैं एक बार छोटी रानी ने वासुकी नाग की पत्नी को बच्चों को जहर पिलाने के लिए भेजा। वह स्त्री रूप धारण करके आई रानी पानी लेने गई हुई थी। उसने बालक को गोदी में उठा लिया तथा अपना स्तन उसके मुंह में डाल दिया। बालक ने जहर तो क्या उसके सारे शरीर का रस भी चूस लिया। नागिन की हड्डियां चरमराने लगी। नागिन क्षमा मांग कर भागी। बालक ने आंगन में उगे 'धतीरे' (एक जहरीला पौधा जिस पर लाल रंग के फूल लगते हैं) की जड़ में सारा जहर उगल दिया। इस प्रकार बालक की हत्या

के अनेक षडयन्त्र रचे गये तथा हर बार मुंह की खानी पड़ी। गूगा युवा हो गया उस की सगाई गौड़ बंगाल की राजकुमारी से हुई। जो भी संदेश वाहक जाता था उसे ही भेड्डू (भेड़ा) बनाकर खूंटे से बांध दिया जाता था। रात्रि को उसे पुरुष बना लिया जाता था। अन्ततः गूगा स्वयं गये तथा राजकुमारी के साथ सबको वापिस ले आए। इसके बीच अनेक उप-कथाएं भी प्रचलित हैं। गूगा सुख पूर्वक राज्य करने लगे। गौ, ब्राह्मण तथा स्त्रियों की रक्षा की जाती थी। एक दिन बूचड़ गांव की गायों को हांक कर ले जा रहे थे। गांव के लोग भागे हुए गूगा छत्री के पास आये तथा रक्षा की पुकार लगाई। गूगा भागे हुए गये और बूचड़ों के साथ उलझ पड़ें। बूचड़ संख्या में अधिक थे घिरे हुए गूगा छत्री का सिर अपनी तलवार से कट गया तो भी वह बिना सिर लड़ते रहे तथा बूचड़ों के छक्के छुड़ा दिये। पास ही एक बावली पर स्त्रियां पानी भर रहीं थीं।

स्त्रियों ने देखा कि बिना सिर का युवक लड़ रहा है। उनमें से एक स्त्री ने हांक लगाई कि देखो बिना सिर के युवक लड़ रहा है। इतना कहना था कि धड़ धरती पर गिर गया। इस प्रकार गूगा छत्री का गायों की रक्षा करते हुए प्राणान्त हो गया। राज्य में आंतक छा गया सभी दुःख में डुबे हुए थे परन्तु गूगा की पत्नी को कोई दुःख न था। यह भी एक रहस्य की बात थी। गूगा की बहिन ने इसका कारण अपनी भाभी से पूछा तो पता लगा कि रात्रि को साक्षात रूप में गूगा उसके पास आते हैं। वह गोबर का एक 'मंदोलू' (धरती पर गोबर का गोल लीपन करना) बना देती थी जब तक वह गीला रहता था गूगा अपनी पत्नी के पास रहते थे। जब मंदलू सूख जाता था तो वह चला जाता था। गूगा की बहिन ने अपनी भाबी को सलाह दी कि वह आज रात गोबर में तेल डाल दे ताकि वह शीघ्र न सूखे तथा गूगा से बातें करने का अधिक आनन्द लिया जाए। गूगा की पत्नी ने ऐसा ही किया। सुबह तक मंदलू नहीं सूखा सूर्य निकल आया गूगा जब उठकर जाने लगा तो बहिन ने उसे अपनी बाहों में भरना चाहा। वह अपनी बहिन की बाहों में ही अदृष्य हो गया तदोपरान्त गूगा अपनी पत्नी के पास भी नहीं आया। देव रूप धारण किए गूगा छत्री के स्थान-स्थान पर मन्दिर बनाये जाने लगे तथा उसकी पूजा होने लगी। आज भी भारत के अनेक भागों में गूगा छत्री के मन्दिर हैं तथा अपनी-अपनी परम्परा के अनुसार उसकी पूजा की जाती है। सिद्धों व नाथों से प्रभावित यह लोक-कथा भी बालक नाथ, पूर्णभक्त, भर्तरी आदि की कथाओं के समान ही प्रचलित है। जन-जन के मुख से कही जाने वाली यह कथा अनेक रूप धारण कर गई है। परन्तु मूल रूप से यही धारणा है कि गूगा जादू-टोना तथा सांप का विष दूर करने वाले देवता हैं।

०–०–०

हि०प्र० राजकीय मुद्रणालय
शिमला - १७१००५

सिरमौर का प्रसिद्ध माघी त्यौहार

—बालक राम जसवाल

भारत वर्ष के हर भू-भाग में भारतीय परम्परा तथा रीति रिवाजों के अनुसार त्यौहार व व उत्सव सदियों से मनाए जाते रहे हैं। कुछ त्यौहार एक ही स्वरूप के होते हैं, परन्तु उनको मनाने का ढंग विभिन्न समाज समूहों में पृथक-पृथक होता है। इसी प्रकार का जिला सिरमौर हिमाचल प्रदेश का माघी त्यौहार मनाया जाता है। हिमाचल के अन्य भागों जैसे कांगड़ा, बिलासपुर, चम्बा, हमीरपुर और ऊना आदि जिलों में इस त्यौहार को 'लोहड़ी' का त्यौहार कहा जाता है। परन्तु जिला सिरमौर में इसे 'माघी' त्यौहार के नाम से पुकारा जाता है।

यह त्यौहार जिला सिरमौर के हर भाग में मनाया जाता है, पर इस जिले के भीतरी भागों में मनाने का इसका अलग ही ढंग है। इस क्षेत्र में गिरी नदी से पार का क्षेत्र तथा शिमला जिला का ऊपरी क्षेत्र चौपाल तहसील शिमला व रामपुर तहसील में ये त्यौहार लगभग पारम्परिक ढंग से सामान्य रीति रिवाजों से मनाया जाता है।

देसी महीने के अनुसार यह त्यौहार पोष मास के २६ गते (प्रविष्टे) से शुरू होता है तथा एक मास तक चलता है। पुरातन काल से इस मास को मकर का महीना कहा जाता है उस समय से यहां के स्थानीय लोग एक मास तक इस 'माघी त्यौहार' को बड़ी धूम-धाम से मनाते हैं। यह भी एक आस्था कि इस त्यौहार को राजा अशोक सम्राज्य काल से मनाया जाता है। क्योंकि यह त्यौहार २६ गते पोष से लेकर ८ गते माघ तक पूरा हो जाता है तथा बाकी इसमें 'आका' सम्वत् मिल जाता है।

इस त्यौहार को मनाने के लिए, त्यौहार के पहले दिन गांव के लोग पशुओं के लिए 'ब्यूल' नामक पेड़ की घास तथा पत्तियां इत्यादि काट कर लाते हैं और पशुओं को खिलाते हैं जिससे सभी पशुओं को गर्मी आती है और ऐसा माना गया है कि इन पत्तियों को खाने से पशु दुधारू हो जाते हैं।

पोष मास के २६ गते यानी पहले दिन सब घरों में मूड़ा भुना जाता है (मूड़ा खाद्य पदार्थ है) इस दिन को मुजान्टी कहा जाता है

२७ गते यानी दूसरे दिन को लोड़पान्टी कहा जाता है जिसका मतलब है कि सभी पशुओं

को हरा घास दिया जाता हैं। २८ गते को डिमलांटी कहा जाता है—इस दिन आटे का घोल बना कर विशेष पकवान बनाया जाता है जिसे 'डिमले' कहा जाता है। जिसको सभी परिवार के लोगों को दिया जाता है तब गांव की अन्य जातियों के लोगों में भी बांटा जाता है। गांव के सभी हरिजन इस दिन राजपूतों और ब्राह्मणों के घर खाना-खाने जाते हैं।

२९ गते को उत्तरान्टी कहा जाता है। इस दिन से त्यौहार पूरा शुरू हो जाता है। इस दिन बकरे तथा खाडू काटे जाते हैं। अब कहीं-कहीं सूअर काटने का रिवाज भी शुरू हो गया है।

३० गते यानी उत्तरान्टी के अगले दिन साजी कहते हैं जिसे संक्रान्ति भी कहा जाता है। इस दिन किसी भी घर में मांस नहीं पकाया जाता। इस दिन घर के सारे बर्तन साफ किये जाते हैं तथा मांस खाना भी पाप समझा जाता है। इसी दिन से मेहमान आने जाने शुरू हो जाते हैं।

इस अवसर पर सब लोक नये-नये कपड़े पहनते हैं तथा आपस में खुशी-खुशी नाचते और गाते हैं। इस अवसर पर ये गाना गाया जाता है :–

ओटे रे सौकुलो दे ताइवरे मोरे रे लाइवरे ।
रूआणी ध्याइणिये कोटे पापो रे लोईरे-शोणे नी लोईरे
छोटे जाणी कपड़े लीए धोई रे धोईरे ।
मास्टरो पोती राम रे गायरे बोदली होईरे ।
ध्याईणों रूकमीएं लाडरे रूऊणू रोईरे ।

गाना गाते तथा नाटी लगाने समय ये लोग मूड़ा (विशेष खाद्य पदार्थ) भी खाते हैं। इसे चिलाई तथा गुड़ मिलाकर बनाया जाता है। नाटी के समय विशेष प्रकार के स्थानीय वाद्य यन्त्र आदि बजाये जाते हैं। जिस दिन यह त्यौहार मनाया जाता है उस दिन 'थपकी' नहीं लगाई जाती अर्थात् खाना पकाने के लिए हाथ नहीं लगाया जाता है।

जिस लड़की का विवाह नया ही हुआ हो उसको उसके मायके वाले त्यौहार का हिस्सा लेकर जाते हैं जिसे 'रान' कहा जाता है। रान बकरे की टांग होती है। यदि उस लड़की ने अपना धर्म परिवर्तन कर लिया हो तो उस रान को अस्वीकार करके वापस भेज देगी अन्यथा रख लेगी।

त्यौहार वाले दिन सुबह ही सभी स्त्री पुरुष व बच्चे गांव की बावडियों में स्नान करते हैं तथा उसे शुभ मानते हैं। और घर में आकर धूप-पूजा इत्यादि करते हैं।

इस मास (माघ मास) का इस क्षेत्र में विशेष महत्व है और बड़ी बेताबी से लोग इस मास का इन्तजार करते रहते हैं इस त्यौहार के मनाने की एक मान्यता यह भी है कि इस भू-भाग

में वर्फ बहुत पड़ने के कारण ठण्ड ज्यादा होती है तथा यहां के लोग पहाड़ी क्षेत्रों में रहने के कारण कठिन परिश्रम करते हैं। इस प्रकार सर्दी से बचने के लिए इसमें ये मांस खाते हैं तथा सर्दी से बचते हैं। यह केवल हिन्दुओं का त्यौहार है।

पूरे महीने रिश्तेदारी तथा मेहमान वाजी का दौर चलता है। कुछ लोग वीरवार के दिन मांस नहीं खाते हैं। एक माघ से दूसरे माघ तक भी मांस रखने की कुछ लोगों में प्रथा है तथा इसे शुभ माना जाता है जिससे घर में सम्पत्ति पूर्ण रहे। माघ के पूरे महीने इस क्षेत्र के हर गांव में नाटीयां लगती हैं। पुरुष स्त्रियां नाटीयां मिलकर गाते हैं। तथा नाचते हैं। नाटी गाते समय गांव का कोई व्यक्ति किसी स्त्री को कहता है कि तू अपने पति को सम्भाल कर रखना कहीं ऐसा न हो कि वह किसी दूसरी औरत के पास चला जाए। यथा :

महीना आया माघो रा, अपणा मालो कोरी बस में।
लाणे बूटो दे तसमें, चम्पा कुलेटी मेरिऐ।

इस गाने नाटी के शब्दों को बार-बार दोहराया जाता है तथा कई-कई घण्टे ये लोग नाच गान करते रहते हैं।

गांव के राजपूत तथा ब्राह्मणों के घर गांव के हरिजन मांस खाने आते हैं। इस कार्य को करने के लिए वे अपनी बड़ाई (बड़प्पन) समझते हैं। इस त्यौहार में एक बात विशेष होती है कि जो पुरुष-स्त्री मेहमान किसी रिश्तेदार के मेहमानवाजी के लिए आता है उसे ५-६ दिन तक वापस जाने नहीं दिया जाता और खूब मांस खिलाया जाता है। इस प्रकार एक मास पर्यन्त चलने वाला ये माघी त्यौहार बड़े हर्षोल्लास से समाप्त होता है।

●

जिला भाषा अधिकारी, सिरमौर (नाहन)
हिमाचल प्रदेश

भद्रवाह--एक सांस्कृतिक अध्ययन

—डॉ० प्रियतम कृष्णा

किसी भी गाँव शहर या स्थान के नाम रखने या पड़ने के अनेक कारण हो सकते हैं। और इन कारणों का आधार भौगोलिक, ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक, जातिगत और धार्मिक परम्पराएं भी हो सकती हैं।

डुग्गर के उत्तरपूर्व के पर्वतांचल में स्थित जिस स्थान को हम आज भद्रवाह कहते हैं, इतिहास के पृष्ठों पर इसी के अनेक नाम मिलते हैं। ऐतिहासिक क्रम से देखा जाए तो यह नाम इस प्रकार हैं भद्रावकाश, भद्राश्रम, भद्रकाशी, भद्रवाल, भद्रवाह। इन सभी नामों के पीछे एक निश्चित मानसिकता देखने को मिलती है। जिसका आधार क्षेत्रीयता, भूगोल, इतिहास, लोक धर्म अथवा लोक विश्वास है।

भद्रवाह का सबसे पुराना नाम हमें राजतरंगनी की आठवीं तरंगके ५०१वें श्लोक में मिलता है जहां इसे भद्रवाकाश कहा गया है। जिसका अर्थ है विश्राम का सुन्दर स्थान। स्पष्ट है कि इस को यह नाम उन लोगों ने दिया जो काश्मीर और बलावर, काश्मीर और चम्बा, और काश्मीर और बसोहली के पैदल मार्ग परआते जाते हुए इस बड़ी सुन्दर घाटी को देखकर, यहां कुछ देर ठहर कर अवकाश ग्रहण करते होंगे। भद्रावकाश नाम सन १०८७-८८ के आस-पास का है और इस समय बलावर, किश्तवाड़, बसोहली और चम्बा के रजवाडे सुव्यवस्थित थे और इनके काश्मीर के राजाओं के साथ निकट के सम्बन्ध थे। अतः लोगों का इस मार्ग से आना जाना चलता था। राजतरंगनी की ७वीं तरंग की श्लोक संख्या ५९०, २१८, २२०, ५८८ और आठवीं तरंगके श्लोक संख्या ५९०, ५३६, ५४२, ६२२ और ५३८ में इनका उल्लेख हुआ है। ऐसी परिस्थितियों में इस स्थान को भद्रवाकाश कहना उचित हो तो है।

भद्रावकाश के मार्ग से गुजरने वाले तरह-२ के यात्रियों में से कुछ मुसाफिर धार्मिक यात्राओं पर जाने वाले भी रहे होंगे। काश्मीर में अमरनाथ और मटन की यात्रा पुराने समय से चली आ रही है। चम्बा, बसोहली और बलावर से काश्मीर तक के लम्बे पहाड़ी रास्तों पर गुजरते हुए जब उन्होंने भद्रवाह की सुन्दर घाटी को देखा तो यहां टिक जाने के मोह को वह रोक न पाए होंगे। और फिर यहां ठहर कर अपने छोटे आश्रमों के पास भद्रावकाश की सभी छोटी बड़ी नदियों को उत्तर की ओर देखा होगा तो उन्हें उनमें गंगा की पवित्रता और इस स्थान में काशी की महिमा

दिखाई दी। शास्त्रों में उत्तर की ओर बहने वाली नदियों को पवित्र माना जाता रहा है। इन्हीं कारणों से राजतरंगनी के बाद के समय में इस स्थान को भद्राश्रम और भद्रकाशी कहा गया है। वासुकी पुराण के १३८ वें श्लोक में लिखा है : 'भद्रावकाश कथितम भद्राश्रम विभूषितम'। जान डिक्ष ने अपनी पुस्तक जम्मु एण्ड काश्मीर टेरिटोरीज के १०५ पृष्ठ के फुटनोट में लिखा है :

The place is called Bhadravakashi also because of the sacred shrine situated on the bnak of a river.

राजनैतिक रूप से भद्रवाह एक छोटी सी इकाई रहा है जिस पर बसोहली, किश्तवाड़, बलावर और चम्बा वालों की नजरें लगी रहती थी। परन्तु इतिहास में इसका ज्यादा सम्बन्ध चम्बा से ही रहा है। सिक्खों और डोगरों के आने पर इस इलाके को भदरवाल कहा जाने लगा। शहमत अली ने अपनी पुस्तक : सिक्ख एण्ड अफगान के १०२ पृष्ठ पर इस स्थान को इसी नाम से पुकारा है। असल में भदरवाल नाम डोगरों और सिक्खों द्वारा दिया गया है और जम्वाल, सम्याल, बन्याल बन्धराल, बडयाल आदि नामों जैसा ही जाति सूचक नाम है।

आज का भद्रवाह नाम भद्रावकाश शब्द से ही बिगड़ कर बना है। 'श' का 'ह' में परिवर्तन हुआ है और क को लोप। अतः भद्रवाह बना।

भद्रवाह का गांव कब बसा होगा ? कुछ कहा नहीं जा सकता। नरसिंह दास नरगिस के अनुसार बलावर के राजा राधक ने ६ वीं शति में आकर भद्रवाह का नगर बसाया और यहां भद्रकाली मन्दिर की स्थापना की। परन्तु एक शिला लेख जिसे मैंने गुप्त गंगा के मन्दिर से ढूंड निकाला है २, ३ शती ईसवी सन का बताया जाता है। प्रारम्भिक जांच के अनुसार इसमें 'गाय' शब्द आया है और यहां श्मशान होने का संकेत भी मिलता है। इस तरह से ऐसा लगता है कि भद्रवाह में आज से १७०० साल पहले भी लोग रहते थे और इन्हें गुप्त गंगा के श्मशान पर जलाया जाता था। इस शिला लेख को जो ब्रह्मी लिपि में लिखा है पूरी तरह से पढ़ने की बात चल रही है।

भद्रवाह में रहने वाले सबसे पुराने लोक कौन रहे होंगे, ठीक से कहना मुश्किल है। पर इस क्षेत्र की संस्कृति के अध्ययन से यही बात जचती है कि भद्रवाह तथा भलेस की घास हरी भरी अधवारों चरागाहों, घने और भरे पूरे देवदार और कायल के जंगलों, ढलान मकई के खेतों उडारों, ठंडी जलवायु तथा मीठे पानी के चश्मों और भरे पूरे नदी नालों ने ही बाहर के लोगों को इधर खींच लाया और ये लोक यहां आ बसे। सबसे पहले यहां आ बसने वालों में जमींदार ठाकुर ब्राह्मण और धन (भेड़-बकरियां) पालने वाले गद्दी लोग ही थे। इन लोगों ने नदी, नालों, चश्मों और जंगलों के पास पड़ने वाली जमीन के बड़े-२ टुकड़ों पर कब्जा कर लिया और यहां बस गए। पुराना ऊधानगर या आज का सतिगल गांव इसी तरह बसा। १० वीं शती तक भद्रवाह नगर भी बस गया और फिर इस पहाड़ी रजवाड़े की एक सीमाएं उत्तर में चन्द्रभागा नदी, पूर्व में भलेस के ऊंचे पहाड़ दक्षिण में छत्तर गला और पश्चिम में स्योजधार तथा रिग्गी नाला तक पहुँची।

समय बीतने के साथ-साथ चारों ओर से लोग आ-आ कर यहां बसने लगे। चम्बा तथा

बसोहली से पुजारी वर्ग के पाधा इत्यादि लोग आ बसे। रामनगर और डुग्गर के अन्य क्षेत्रों से महाजन और व्यापारी वर्ग के लोग यहां आए। काश्मीर से पहले तो काफ़ी संख्या में बुनकर जुलाहे यहां आ बसे और फिर रोजी रोटी की तलाश में, और लड़ाई, उत्पीड़न और केहत इत्यादि से डर कर भी, काश्मीर से भाग कर लोग यहां बस गए। इनमें काश्मीर मुसलमान और हिन्दू दोनों तरह के लोग थे। यह बात सदियों पहले की है। मैदानी इलाके से भी कुछ पंजाबी बनजारे और हिन्दू जोगी ब्राह्मण यहां आ बसे और यहीं के हो लिए। इस समय यहां हिन्दू तथा मुसलमानों की संख्या बराबर सी है।

सारे संसार के मुसलमानों को इस्लाम से ही प्रेरणा मिलती है इनके समाज में सादगी है। आडम्बर अन्धविश्वासों से वह दूर हैं और मनुष्य की प्राकृतिक आवश्यकताओं के अधिक नजदीक थी। उन की प्रेरणा शक्ति का स्रोत भी रक्षक या भक्षक एक ही खुदा है। इसीलिए मुसलमानों में हमें किसी खास लोक संस्कृति का रूप नहीं मिलता। इसके मुकाबले में हिन्दुओं में सैंकड़ों देवी देवताओं, जातियों पातियों, मत मतान्तरों लोक विश्वासों के होने से हिन्दु लोक संस्कृति की जड़ें बड़ी गहरी और व्यापक हैं। अकेले डुग्गर क्षेत्र में ही बावों और पीरों की गिनती दर्जनों हो जाती है जिनका आदर लोक समाज में देवी देवताओं से किसी प्रकार कम नहीं। पहाड़ों में तो लोग और भी अधिक बंटे हैं और इसी कारण भद्रवाह के पहाड़ी क्षेत्र में भी लोक संस्कृति का व्यापक रूप देखने को मिलता है। सारा साल यहां मेले, तिहार, मालचे, कुड, सुकखने, जतारें, प्याले, गुस्सेतन, खेडाह झखडाल, जैसे लोक त्यौहार देखने को मिलते रहते हैं। धर्म दीस, कण जातर, थण चक्क, टिलधारो, पटल पूजा, भण्डारा, उटलान, दियोली कण चउथ, पुझव, गुचक्कर, नाग जुहारनी, पूछोई मूंचोई, हेठुहिठार इत्यादि को अगर छोड़ भी जाए तो मेला पट्ठ और कैलाश यात्रा के लोक मेले सभी को विदित है। चिन्ते और भेज्जे भलेसा गांव की जातर में चेले को जलती आग पर चलते देख हैरत होती है।

भद्रवाह के लोग सादगी पसन्द, मेहनती और होशियार है। तालिम में वह बहुत आगे निकल गए हैं। इसका मुख्य कारण भद्रवाह का मुख्या अमर हाई स्कूल है। १६०६ में राजा अमर सिंह अपनी जागीर देखने वहां आए और श्री अमर सिंह हाई स्कूल की स्थापना कर गए। मेहनती लड़कों ने मेहनत करके पढ़ाई की और ऊंचे पदों पर आसीन हुए। पर यह भी एक अजीब कुयोग ही समझें कि अमर हाई स्कूल ने जितने भी बड़े आदमी पैदा किए उनमें से ज्यादातर भद्रवाह छोड़कर बाहर जा बसे। इसी स्कूल से पढ़े कुछ छात्रों को इस हाई स्कूल के नाम में अमर सिंह का शब्द सामन्तवाद की आखिरी निशानी दिखाई दी और एक दिन इन प्रगतिवादियों ने स्कूल के नाम से अमरसिंह का नाम निकाल कर बाहर किया। प्रगतिवाद का इससे अच्छा उदाहरण क्या हो सकता है।

भद्रवाह के साहित्यक और सांस्कृतिक क्षेत्र में जिन लोगों ने काम किया उनमें स्व. प. गौरी शंकर, रसा जावदानी और डॉ० सिद्धेश्वर वर्मा का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। प० गौरी

शंकर ने भद्रवाही में गीता का सफल अनुवाद कर उसे ५० वर्ष पहले छपवाया। डा० सिद्धेश्वर वर्मा के भलेषी, भद्रवाई और खलाली बोलियों पर लिखे लेख विश्व प्रसिद्ध हैं। रसा जावेदानी काश्मीरी और उर्दू में लिखने वाले भद्रवाह के माने शायर रहे है और उनका कलाम रेडियो श्रीनगर से अक्सर प्रसारित होता रहता है। इनके अतिरिक्त भद्रवाई, उर्दू और हिन्दी में लिखने वालों में पं० कमल नैन निगहत, जान मुहम्द तिश्ना, बाल कृष्णा दुःखी, लाल चन्द अमर, बशीर अहमद बशीर, हुदहद इत्यादि के नाम लिए जा सकते हैं। ये सब भद्रवाह के रहने वाले ही हैं।

भद्रवाह के मूर्तिकारों और वास्तुकारों का तो हमें कुछ भी पता नहीं, जिन्होंने वासुकी मन्दिर की उत्कृष्टतम मूर्तियाँ बनाने में अपनी कला प्रदर्शन किया या जिन्होंने भद्रवाह का किला बनाया पर इस समय के युवक कलाकार जिनकी सम्भावनाएं काफी उज्ज्वल जान पड़ती हैं, का यहां जिकर करना हम भूल नहीं सकते। इस युवक का नाम इन्दर मन्हास है। इस की मूर्ति कला की उत्कृष्टता की सच्ची प्रशंसा तो किसी कला पारखी द्वारा ही की जानी चाहिए पर मुझ जैसा साधारण कला प्रेमी भी उसकी छेनी की मार से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका। यह युवक अपने कालेज जीवन में ही मट्टी से मूरतें बना कर अपना नाम कमा चुका है।

भद्रवाह के भूगोल, इतिहास और लोक जीवन से बहुत सी घटनाएं सम्बन्धित हैं। पहली घटना तो जुग़राफिग्राई हालात में है जिन्होंने भदवाह की सुन्दर घाटी को जन्म दिया। और चारों ओर ऊंची हरी भरी अधवारों और देवदार के सरसब्ज जंगल बनाए। हजारों हजारों सालों में भूगर्भीय कारणों से लावा बना और फिर जमकर भदवाह की आग्नेय चट्टानें बनीं, ऊंचे पहाड़ बर्फ गिरती रही और बर्फ के अम्बार लगते रहे, यह बर्फ के विशाल ढेर पहाड़ों की ऊंचाईयों से धीरे-२ नीचे की ओर फिसलते रहे, और पहाड़ी ढलानों को सुन्दर और हमवार बनाते रहे और फिर समय बीतने के साथ-साथ इन ढलानों पर घास तथा जंगल उग आए। स्योज, सबार कांठी, जाई, चिन्ता पद्दरी और भाल पद्दरी जैसी अधवारों की सैर कर लेने पर उनको भला कौन भुला सकता है। कपलास और आशापति के पर्वतों को किन हलचलों ने जन्म दिया होगा। नीरु और हल्या ने घाटी के नक्शे कैसे बदले होंगे? सारी घाटी में फैले ग्रेनाईट के बड़े-बड़े पत्थरों को किन बाढ़ों या हिमानियों ने नीचे सरका लाया होगा फिर समय बीतते पर किस तरह लोग यहां आ बसे होंगे?

कहते हैं पालवंश के राजा नागपाल ने कोई हजार वर्ष पहले भद्रवाह बसाया। कहते हैं भद्रवाह पहले चम्बा के अधीन था। कहते हैं शकतू कुटवाल के आधीन इकट्ठे होकर भद्रवाह के लोग ने चम्बा वालों को पद्दरी धार के पास शिकस्त दी। १६२८ में भद्रवाह में एक भयंकर बाढ़ आई और कोई १००० आदमी बह गए। शहर की बड़ी मस्जिद भी सैलब की नजर हो गई। १६४८ में जून-जुलाई में यहां बहुत भूंचाल आते रहे हैं।

भद्रवाह के इलाके में लोक गीतों का प्रचलन बहुत है इसी लिए संगीत के [illegible] उनका प्रेम विशेष है। पुरुष वर्ग मेलों और तिहारों पर ढेक्कू नृत्य बड़े चाव से करते है। क[illegible] की दृष्टि

से ठेक्कू नृत्य ही उल्लेखनीय है। नृत्यकार एक घेरे में नचते हैं और बीच में ढोल बजाया जाता है। नृत्यकार ठोंस, नरसिंहा, घंटी बैंगरा के ताल पर एक ही हाव भाव के साथ नाचता जाता है और फिर धीरे धीरे संगीत की तेजी के साथ साथ नाच में भी तेजी आने लगती है और नाचने वाले अपने आप को भूलकर तेजी से नाचते जाते है। उन के मुंह से अनायास सी 'सी' होई 'होई' की आवाज निकलने लगती है। और आखिर में नृत्य अपनी पूरी ऊंचाई पर पहुँचकर एकाएक रुक जाता है। दूसरी तरह का नाच लेबर या मजदूर वर्ग के लोग दिन भर मजदूरी से थककर शाम को मन बहलाने के लिए करते हैं। ५-१० मजदूर मिलकर ढोलकी के ताल पर गीत गाते जाते हैं और घेरे के बीच में बैठा नृत्यकार ठहर-ठहर कर ताल दे-दे कर नाचता रहता है जब तक कि नृत्यगीत समाप्त नहीं हो जाता। औरतें शादी विवाह या बड़े दिन ही नाचती है और उनका नाच धुरेई कहलाता है भद्रवाह की घाटी-घाटी जिसे मैदानी लोग छोटा कश्मीर भी कहते हैं—की इस छोटी सी जानकारी देने के बाद मुझे वासुकी पुराण की यह पंक्तियां बार-बार याद आती है।

'जब तक कैलाश की चोटियों पर मेघ धारा बनी रहेगी तब तक हिमालय में बनी इस देव पुरी को देखने की लालसा भी भिन्न-भिन्न लोगों में बनी रहेगी'।

०-०-०

कुल्लू के व्रत, पर्व व त्यौहार

—चन्द्र शेखर 'बेबस'

कुल्लू में ब्रत-पर्व और त्योहार जो शास्त्रों में वर्णित हैं प्राय. शास्त्रोक्त विधि से मनाये जाते हैं। जैसे कि देश के अन्य भागों में इनको मनाने वाले मनाते हैं। इस वर्ग को स्मार्त वर्ग कहना उचित रहेगा क्योंकि सनातनियों की व्याख्या बड़ी विस्तृत सी लगती है। ब्रत उत्सव त्यौहार इनकी भी व्याख्या कुछ अलग अलग सी जान पड़ती है। ब्रत तो पूर्ण धार्मिक पर्व सा होता है। त्योहार धार्मिक, जातीय और सांस्कृतिक मिश्रित तथा उत्सव धार्मिकता रहित भी हो सकता है। पौराणिक त्योहारों के अतिरिक्त भी यहां धार्मिक त्योहार और उत्सव होते हैं। इनको धार्मिक मूल्य शास्त्र परक न होकर जातीय देवता परक होते हैं। देव और देवियों पौराणिक देवताओं के तत्सम और तद्भव जैसे ही हैं और ऐसे भी झटपटे नाम हैं जिन्हें चिन्हने में अनुमान भी असमर्थ ठहरता है।

यहां की अधिक दैविकता में एक भिन्नता यह है कि प्रत्येक लोक देवता-देवी का मंदिर स्थित पिंडा प्राण (मूल सत्ताया विग्रह) मूर्ति-मुखौटा या पिंडी जिसका नित्य पूजन अर्चन होता है से भिन्न जंगम रूप भी होता है, दक्षिणापथ के देवताओं के पूजा विग्रह जैसे, इनका राजसी ठाठ बाठ बाजा गाजा के साथ पालकी सी सजा कर दूल्हे के समान स्थानांतरित किया जाता है। इनके माध्यम से स्वतः ही उत्सव बन और मन जाता है। महाभारत में 'उत्सव संकेत' शब्द कुल्लू के लिए प्रयुक्त किया गया है या किसी और क्षेत्र के लिए। परन्तु प्रत्यक्षतः यह घटता पूर्णतया कुल्लू पर ही है। जहां प्रत्येक ग्राम या ग्राम समूह का अलग देवता उसका वाद्य वृन्द और ठाठ बाठ, निश्चित सौह (मेलास्थल) और निश्चत उत्सव (जिसे जातर जाच या मेला कहते हैं) का दिन होता है। जाच में धार्मिक (देवता के गूरों/चेलों) द्वारा लोहे के शस्त्रों से बाजे के ताल पर नाच किया जाता है।देऊ खेल और सांस्कृतिक नाटी आदि लोक नृत्य, प्राघूणिकता, एक से अधिक लोक देवता जितने सम्मिलित होंगे रौनक उतनी ही बड़ी होती जाती है ये उत्सव वर्ष भर रहते हैं और घाटी का कोई न कोई अंचल ढोल ढमाकों से नित्य गूंजित मिलेगा।

लोकोत्सव प्रायः सौर मास प्रविष्टों पर ही अधिक होते हैं महीने का प्रथम दिन 'साजा' कहा जाता है जो स्वयं सिद्ध त्योहार कहा जाता है। चैत्र का जेठा बिस्सू और इन दो के मध्य चांद्र वर्ष का प्रथम दिन सम्वत: या गुड़ा या मीठा साजा कहलाता है। विशेष साजों सम्वत, कौन्हा बिश्शू भादों का डागणी (डाकिनी) साजा असौज का

शैर (शौइरौ) साजा और माघ का खिचड़ी साजा प्रसिद्ध है। अब हम प्रत्येक मास के त्योहारों (क्षत्रीय-जातीय) का वर्णन करते हैं। इससे पूर्व यह बताना आवश्यक है कि १. कुल्लू के सर्वोच्च देवता श्री रघुनाथ जी हैं उनके माध्यम से भी कुछ त्योहार उत्सव मनाये जाते हैं जो अन्यत्र स्मार्त लोगों में नहीं मनाये जाते।

२. कुल्लू की साधारण जनता को धर्म शास्त्र की नहीं, रीति की पाबन्द माना गया है। (इसी कारण दाय भाग आदि में भी बहुत सी बातें यहाँ मनु-मितादरा आदि के विरुद्ध मान्यता प्राप्त है)।

चैत्र महीने में देवताओं का साधारण देऊ चार होता है। नया संवत वाले दिन शमशी की ज्वाला मुखी देवी की जातर में क्षेत्र की महिलाएं नाचती हैं। सरसेई में बासू नाग तथा खड़ासणी देवी की २ जबाड़ी जातर, ३ करजां व जगतसुख मे स्थानीय देवियों दोवा-मोचाव संध्या देवी की ४ चौहलियां होती हैं। डूघीलग में देवी मांगा सिद्धी की ५ टकरेढ़ी, सराज में चेच बंजार में ६ द्वाला जातर।

इस मास में संक्रांति वाले दिन रली नाम से गौरी का पूजन आरम्भ करती हैं और महीना भर उन्हें पूजती हैं। बालिकाएं बैसाख संक्रांति को धूम-धाम से शंकर ब्याह करके जल परवाह कर देती हैं।

कुल्लू शहर के स्थायीनिवासी या मंडी से आए लोग रात को महिलाओं की छींभा नाम के गानों के लिए महफिल जुटाते हैं। ये गाने इसी मास में गाये जाते हैं। छोंके हुए चनों का वितरण किया जाता है।

बैशाख में ७ जिया, ८ तरांबली, ९ भेखली, १० पूईद, ११भूठी, १२ वसिष्ठ, १३ सजला, १४ शुरू, १५ कुल्लू, १६ मोहाल, १७ जरढ़ के मेले होते हैं। इसी बैसाख संक्रांति को १८ धारा की चामुण्डा के पास महिलाएं लोक नृत्य करती हैं। १९ हाट जातर भी होती है।

जेठ संक्रांति को २० बंजार, २१ लारजी, २२ गड़सा, २३ मनाली, २४ आणा, २५ नगर,२६ शिरढ़ (तीसरे साल) मेले जोरदार होते हैं।

आषाढ़ में २७ भूणतर, २८ जलूगा, २९ भेखली, ३० खोखणी, ३१ दयार, ३२ बागन, (शाड़नू) (कई शाड़नु श्रावन के साजे को और प्रायः सभी शाउंण (श्रावन) के मेले) भादों के साजे को मनाए जाते हैं।

श्रावन में पिरड़ी ३३ शाढ़नू, ३४ पीणी, ३५ पड़ई, दरपैरण, ३६ भलयाणी।

भादो में ३७ बणोगी, ३८ जुग्राणी, ३९ वजौरा, ४० लरां केलो, ४१ जमलू के बाईस स्थानों में ग्राम देवता की सवारी घर-घर जाकर धूप पीती है। भादों के बीस गते की संगमों तीर्थों पर स्नान का कुंभ जैसा पुण्य माना जाता है।

असौज में ४२ भमतीर, ४३ व्यासर, ४४ कुल्लू, शहर, ४५ मनीकर्ण, ४६ हरिपुर ४७ नग्गर, ४८ वसिष्ठ के दशहरे; असौज का प्रथम दिन शर साजा सर्वाधिक धूमधाम से मनाया जाता है। साजो को बड़ (भल्ले) बबरू आदि बड़े चाव से बनाये खिलाए, खाए जाते हैं। अखरोटों की भेंट देकर बड़ों का बन्दन करते हैं। पीना पिलाना भी साथ चलता है। महिलाओं की भूमिकाएं परोसने तक हीसीमित रहती हैं। असौज बदि चतुर्थी को बिजली महादेव का कालिका होता है। कुल्लू दशहरे को विजै दशमी कहते हैं, इसमें रामायण के युद्ध कांड का अभिनय स्वयं रघुनाथ जी करते हैं। वे एक बड़े रथ पर खड़े होकर लंका पर चढ़ाई करते हैं। बीसियों ग्राम देवता उनके सहायक रूप में दल बल सहित साथ चलते हैं। सातवें दिन लंका दहन रावण बध करके उसी प्रकार लौट कर राज्याभिषेक मन्दिर में करते हैं।

मग्घर की पूर्णिमा को सभी वीर देवताओं से सम्बद्ध लोग अपने-अपने वीरों की पूजा धूम-धाम से करते हैं।

इसी महीने की अमावस्या को बाहरी सीराज में बूढ़ी दैंउड़ी होती है।

पौष महीने को कोली (कुलुई) ग्याली (दीवाली) घर-घर में मनाई जाती है बड़े, बबरू बनाकर बरामदे के जंगले पर शल्ली (तेल वाली लकड़ियां) जलाकर पूजन करते हैं। बच्चों के लिए अखरोटों की बौछार करते हैं। देवताओं की ओर से दीवाली के कई दिन पूर्व से गांव की गलियों में अश्लील टप्पे बाजे सहित गाते हुए घूमते हैं। कई स्थानों पर छार फैंकते हैं। नगर में गनेड़ मेला होता है।

माघ के साजे को खिचड़ी खिलाई जाती है। साजे को कच्ची खिचड़ी का दान भी किया जाता है। (यहां लोहड़ी को आगंतुक लोग ही मनाते हैं) माघ में बहुत सदियाले से होते हैं। माघ शुक्ला तृतीया को गौंतरी त्योहार होता है जब बोदी (नरगिस) फूलों के मूल (प्याज जैसे गट्ठे, शिव पार्वती चित्रित किये जाते हैं और प्रथम दिन पूड़े दूसरे दिन बाड़ी (पानी का नककीन हलवा) और घी, तीसरे दिन घी, खिचड़ी का भोग लगा कर बिसर्जन किया जाता है। इसी दिन बसंत पंचमी का मेला रघुनाथ जी का होता है छोटा रथ चलता है तेल, सिंदूर मल कर हनूमान बना व्यक्ति मेले के लोगों को रंग

लगाता हुआ दौड़ता और दौड़ाता है। भरत और राम की भूमिका करते हुए दो पुजारी भरत मिलाप करते हैं।

इसी दिन होली गाई बजाई जाकर चालीस दिन का त्योहार आरम्भ होता है। इस दिन से प्रत्येक शुभावसर पर होलियां गाई जाती हैं फागुन शुक्ल ८ वीं से वैरागियों की टोलियां डफ झांझ की जोड़ियां बजाते हुए रघुनाथ मंदिर संध्या समय आते हैं अन्तिम दो दिनों रंग गुलाल की होली खेल कर पूर्णमासी को कांटो के ढेर को कर्म कांड पूर्वक आग लगाई जाती है।

इसी महीने सभी देवताओं के यहां फागलियों के मेले होते हैं इस दिन सर्वाधिक देऊ चार आगामी वर्षों का भविष्य गूरों के मुख से सुना जाता है। देवता अपना इतिहास भी सुनाते हैं।

पौराणिक या शास्त्रीय व्रत-पर्वों को धार्मिक व स्मार्त जन सार्वदेशिक ढंग से मनाते हैं।

●

शोध कार्य

इस शीर्ष के अन्तर्गत सोमसी हिमाचल के पी० एच० डी० विद्वानों के विषय का सार प्रकाशित कर रही है। इस क्रम में डा० कृष्णा रैणा का शोध कार्य का सार प्रस्तुत है।

हिन्दी और कश्मीरी निर्गुण सन्त साहित्य

—डा० कृष्णा रैणा

डा० कृष्णा रैणा का जन्म ५ मई १९४० को श्रीनगर (कश्मीर) में हुआ है। मातृभाषा कश्मीरी होने पर भी आरम्भ से ही हिन्दी में विशेष रुचि रही। कश्मीर विश्वविद्यालय से हिन्दी में प्रथम रह कर एम. ए. पास करने के पश्चात कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय से पी. एच. डी. किया। कश्मीर विश्वविद्यालय के हिंदी-विभाग के प्राध्यापकों की प्रेरणा से कश्मीरी भाषा और साहित्य के प्रति उत्सुकता बढ़ी।

भारतीय भाषाओं के साहित्य की अपनी ही महता है। सन्त काव्य विभिन्न भाषाओं के उपलब्ध है भाषा वैभिन्य होते हुए भी उन की मूल विचारधारा में शाश्वत सत्य के दर्शन होते हैं सन्त काव्य चाहे हिन्दी में हो, चाहे मराठी में चाहे कश्मीरी में हर भाषा में काव्य की उपादेयता लगभग समान है। भारतवर्ष में प्राचीन काल से ही भिन्न जातियां और भिन्न भाषाएं रही हैं परन्तु अनेकता में एकता यहां की संस्कृति की मूल विशेषता है इसी कारण भिन्न भाषाओं के साहित्य में समानता पाना असंभव नहीं है। इसी बात को ध्यान में रख कर कृष्णा रैणा ने 'हिन्दी और कश्मीरी निर्गुण–सन्त–काव्य तुलनात्मक अध्ययन, विषय पर डा० विनय मोहन शर्मा (भूतपूर्व अध्ययन एवं आचार्य हिन्दी-विभाग कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय) के निर्देशन में शोध कार्य किया।

वास्तव में तुलनात्मक अध्ययन का उत्तरदायित्व आलोचना एवं अनुसंधान से भी अत्यधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि उच्चतर ज्ञान की उपलब्धि तुलना पर ही आधारित होती है। संसार के विभिन्न देश-वासियों में वर्ण, धर्म और जातिमत भेद-भाव होने के उपरान्त भी उन की अनुभूति और विचारों में समानता पाई जाती है। यही कारण है कि विश्व साहित्य में अभिव्यक्त चेतना और अनुभूति

समान है भाषा विचारों और भावों का परिधान है अभिव्यक्ति का माध्यम है। अनुसंधान की प्रक्रिया में तुलनात्मक विधान की भी सहायता ली जाती है और तुलनात्मक अध्ययन में भी गम्भीर अन्वेषण परीक्षण और निष्कर्ष आदि साहित्यिक आलोचना तथा अनुसंधान की प्रक्रियाओं से लाभ उठाया जाता है। तुलनात्मक अध्ययन का मुख्य उद्देश्य इसी भिन्न साहित्यों की भाषागत भिन्नताओं में साहित्यिक एकरूपता का निरूपण करना है। हम अपनी विशेष भाषा, प्रान्त अथवा जाति के अतिरिक्त अन्य भाषा प्रदेशों से भी अवगत होते हैं। तुलनात्मक अध्ययन विश्व मानव-एकता का उद्घाटन करता है। इसका उद्देश्य साहित्यिक प्रक्रियाओं की परीक्षा, तुलना वर्गीकरण और तथ्यों का प्रकटीकरण करना है। भारतवर्ष में विशेषकर इस प्रकार के अध्ययन की अवश्यकता है। अतः भारतीय साहित्य को समग्र रूप से जानने के लिए प्रादेशिक साहित्यों को जानना और उनसे अवगत होना अत्यावश्यक है सांस्कृतिक एकता के लिए प्रादेशिक साहित्यों का तुलनात्मक अध्ययन इस दृष्टि से महत्वपूर्ण क्षेत्र है और लेखिका ने अपना शोध इसी दिशा में किया है।

हिन्दी और काश्मीरी भाषा में भाषागत कोई साम्य नही क्योंकि कश्मीरी दरद परिवार की भाषा है अतः भाषागत अध्ययन की अपेक्षा दार्शनिक विचारधारा इस शोध का केन्द्रबिन्दु है। कश्मीरी भाषा के संत-कवियों की ओर अभीतक किसी का ध्यान ही नहीं गया था। कश्मीर यद्यपि राजनीतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण प्रदेश प्राचीनकाल से ही रहा है। परन्तु इसका साहित्य अन्धकार के गर्त में ही था। अंग्रेजी में एक दो पुस्तकों के अतिरिक्त सारी सामग्री यहां पाण्डुलिपियों में ही सुरक्षित थी। उपलब्ध साहित्यिक रचनाओं में काल क्रमानुसार इतनी रिक्ता है कि इसका इतिहास अभी तक नहीं लिखा गया। द्वितीय बात यह है कि कश्मीरी साहित्य और इसके इतिहासकी ओर अभी किसी का ध्यान भी नहीं गया है। कल्चर्ल अकादमी श्रीनगर ने कई प्रयास अवश्य किये हैं परन्तु उनमें संकलन की मात्रा अधिक है और शोध की अल्प। कश्मीरी भाषा की अपनी शारदा लिपि अब मृत-दाय हो चुकी है। अंग्रेजी और उर्दू में काश्मीर लिखने के प्रयास भी सफल नहीं रहे क्योंकि उनमें उच्चारण अशुद्धियां खटकती हैं यही कारण है कि लेखिका को कश्मीरी भाषा को देवनागरी लिपि में देने के लिए भिन्न रूप चिन्हों को ढूंढना पड़ा।

लेखिका का यह शोध-प्रबन्ध नव अध्यायों में विभाजित है। प्रथम अध्याय में कश्मीरी भाषा और भक्ति-साहित्य का विकास है। इसमें कश्मीरी भाषा की उत्पत्ति और विकास, कश्मीरी भाषा की प्रमुख विशेषताएं और लिपि का विवेचन कर इस साहित्य में उपलब्ध प्रवृतियों का उल्लेख है। द्वितीय अध्याय में 'सन्तों' को प्रभावित करने वाले विभिन्न दार्शनिक मतों का उल्लेख है, इसमें वेदान्त, शैवमत और सूफीमत का विशेष उल्लेख है। शैवमत के चार उप संप्रदाय या गुप्त मत, शैव सिद्धान्त वीर शैवमत और कश्मीर शैवमत का विवेचन विशेष रूप से है। शोध प्रबन्ध के तृतीय अध्याय में १४ वीं १५ वीं शताब्दी के कश्मीरी संतकवि और उनकी दार्शनिक विचारधारा है। इसमें लल्लद्यद और नुंदर्योश के जीवन, राजनैतिक पृष्ठभूमि रचनाएं और विचारधारा का विवेचन है। चतुर्थ अध्याय १६ वीं और १७ वीं शताब्दी के कश्मीरी संत और उनकी दार्शनिक विचारधारा है। इस काल में एक ही संत कवयित्री रूपभवानी आती है। इस अध्याय में अन्तंसाक्ष्य और बहिंसाक्ष्य के आधार पर रूपभवानी का जीवन, वंशावली, युग और रचनाओं का विवेचन कर

उनकी दार्शनिक विचारधारा को दिया है। पांचवें अध्याय में १८-१६वीं शताब्दी के कश्मीरी संत-कवि और उनकी दार्शनिक विचारधारा है। इसमें संत-कवि मिर्जाकाक, परमानन्द, समसफकीर कृष्ण राजदान, सन्त लछकाक, और रामानन्द के जीवन युग-परिस्थितियों और दार्शनिक विचारधारा का विवेचन इन कवियों के काव्य की पान्डुलिपियों के आधार पर किया गया है। षष्ठ अध्याय में १४ वीं और १५ वीं शताब्दी के हिन्दी संत कवि और उनकी दार्शनिक विचारधारा है। इसमें सन्त नामदेव, कबीर और गुरूनानक आते हैं। इस अध्याय में इन कवियों की दार्शनिक विचारधारा है। सातवें अध्याय में संत दादूदयाल, रज्जबदास, सुंदर दास, मलूकदास और संत दूलनदास का विवेचन है। आठवें अध्याय में संत-कवि चरणदास और पलटूदास का विवेचन है। नवम अध्याय में हिन्दी एवं कश्मीरी भाषा के संत-कवियों की दार्शनिक-विचारधारा का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया हैं। इसमें सिद्धान्तपक्ष और साधना पक्ष के अन्तर्गत दोनों भाषाओं के कवियों की विचारधारा का तुलनात्मक अध्ययन कालक्रमानुसार किया है। इस अध्याय से स्पष्ट होता है कि दोनों भाषाओं के कवियों के ब्रह्म, जीव जगत और माया सम्बन्धी क्या विचार थे। व्यवहार पक्ष में उन्होंने कैसे साधना के बाह्याडम्बरों—अवतारवाद, जाति-प्रथा का आदि खण्डन कर प्रेम, ज्ञान और योग आदि को महत्व दिया। कवियों की नारी-सम्बन्धी विचारधारा भी इसी से अवगत होती है। भाषागत विभिन्नता होने पर भी दोनों भाषाओं की काव्य शैली में जो साम्य हैं वह भी इसमें दर्शाया गया है।

इस शोध प्रबन्ध की अत्यधिक प्रशंसा हुई जब यह प्रकाशित हुआ डा० प्रभाकर माचवे और डा० इन्द्रनाथ मदान ने इस दिशा में और-और कार्य करने की प्रेरणा दी। इन्हीं गुरूजनों की प्रेरणा से कश्मीरी निर्गुण सन्त काव्य दर्शन और 'भक्ति' पुस्तक लिखी, जिसमें गहराई से अध्ययन किया गया। क्षेमेन्द्र और अभिनव गुप्त के कश्मीर ने एक ऐसे शिव-शक्ति संयोग को अपने निर्गुण काव्य के माध्यम से व्यक्त किया कि उसमें सूफी विचार धारा आत्मसात् हो गई। कबीर नामदेव, नानक ने जो हिन्दू-मुस्लिम एकता की नींव रखी, जिसे नेहरू जी ने 'मिली-जुली-संस्कृति' कह कर विशेष रूप से सराहा, कश्मीरी निर्गुण सन्तों ने उसकी मूल भूत दार्शनिक संश्लिष्ट नींव रखी थी।' (३७० प्रभाकर माचवे) 'डा० कृष्णा रैणा ने हिन्दी और कश्मीरी सन्त काव्य के तुलनात्मक विवेचन से एक अछूते विषय पर अनुसन्धान का काम किया है। काश्मीरी साहित्य का विश्लेषण अभी तक उपेक्षित रहा है और हिन्दी में तो यह नगण्य ही रहा है। इस दृष्टि से डा० रैणा का शोध-प्रबन्ध इस अभाव को पूरा करता है। आधुनिक युग में भारतीय भाषाओं का विकास तेजी से होने लगा है और न केवल यह देश के हित में है अपितु जन साधारण के हित में भी है। इस तरह का प्रयास न केवल अपनी आत्मा को पहचानने के लिए आवश्यक है, देश की विविधता में एकता को पहचानने के लिए भी आवश्यक है। भारतीय संत काव्य पर डा० रैणा की गहरी पकड़ है। (डा० इन्द्रनाथ मदान) लेखिका के अध्ययन और शोध को प्रेरणा और प्रोत्साहन हर क्षेत्र से मिला। 'कश्मीरी निर्गुण सन्त काव्य दर्शन और भक्ति' पुस्तक पर भारत सरकार के शिक्षा मन्त्रालय ने लेखिका को राष्ट्रीय पुरस्कार से पुरस्कृत भी किया है। लेखिका ने 'हिन्दी निर्गुण संत काव्य दर्शन और भक्ति' पुस्तक भी लिखी है जो शारदा प्रकाशन दिल्ली से प्रकाशित है। लेखिका ने 'दायरे' नाम से सात कवियों की कविताओं का एक-एक संकलन भी किया है जो सूर्य प्रकाशन

दिल्ली से प्रकाशित है इसमें ऐसी कविताएं हैं जो गुटबन्दी के दायरे में नहीं पड़तीं। 'प्रभाकर माचवे के हिन्दी उपन्यास' नाम से लेखिका की एक और पुस्तक छप रही है।

लेखिका 'हिन्दी कहानी में नारीचित्रण के विविध आयाम' विषय पर आजकल शोधकार्य कर रही है। सृष्टि के विकास क्रम में यद्यपि नर-नारी दोनों का स्थान महत्वपूर्ण है परन्तु नारी की भूमिका इसके सफल निर्वाह में अपेक्षाकृत अधिक उपयोगी एवं प्रभावपूर्ण है। नारी के बिना पुरुष का जीवन अपूर्ण है। वास्तव में वही उसके सृजन, पोषण और उन्नयन को आधार शिला है। भारतीय संस्कृति में 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' का स्वर मुखरित कर हमारे ऋषियों ने नारीत्व के प्रति असीम श्रद्धा व्यक्त की है। मातृसत्तात्मक परिवार नारी की महत्वपूर्ण भूमिका की अभिव्यक्ति है। नारियां सर्वत्र संस्कृति की पालिका समझी जाती हैं। विश्वभर का साहित्य नारी की अभूतपूर्व गरिमा से मण्डित है अतः हिन्दी साहित्य भी इसका अपवाद नहीं है। आधुनिक कहानी साहित्य मूलतः हमारे समाज के मध्यवर्ग की जीवन गाथा पर आधारित है। मध्यवर्ग की आधार शिला एक ओर तो उसकी अर्थिक स्थिति है और दूसरी ओर उसके परिवार की केन्द्रबिन्दु स्त्री।

आज की कहानी की नारी एक ओर अपनी सच्चाई में जीने वाली नारी है, वह मां, पत्नी, प्रेमिका, बहन और पुत्री की परम्परागत भूमिकाओं में भी है और कहीं केवल नारी है। आज कहानी कार न उसकी वकालत करता है और न निर्णय देता है। हिन्दी का कहानी-साहित्य नारी के स्वतन्त्र व्यक्तित्व के विकास की क्रमिक स्थापना का ज्वलन्त प्रमाण प्रस्तुत करता है। समाज में नारी माता, पत्नी, प्रेमिका, पुत्री और बहन के शाश्वत रूप में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं इसके अतिरिक्त आधुनिक युग में नारी शिक्षा प्राप्त कर पुरुष के साथ-साथ कार्य कर रही है, पश्चिम की नारी का प्रभाव यहां के नगरों में उच्च मध्य वर्ग की नारी पर भी पड़ रहा है, शिक्षा और अर्जन से नारी में स्वतन्त्रतय की चेतना आ रही है और कई पुरानी मान्यताएं और धारणाएं बदलने लगी हैं जिसके फलस्वरूप पारिवारिक विघटन के बीज फैल रहे हैं और इसमें नारी को बहुत कुछ सहन करना पड़ रहा है। नारी की घर और घर के बाहर दोहरी भूमिका बन गई है। इस परिवेश में नारी के उत्थान के लिए विश्वभर में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रयत्न हो रहे हैं।

द्वितीय अध्याय 'भारतीय साहित्य में नारी' है इसमें नारी के प्रति दृष्टिकोण में क्रमिक विकास और बदलाव का चित्रण किया गया है। इसमें वैदिक काल से रामायण, महाभारत, पौराणिक और बौद्धकाल में नारी के प्रति बदलते दृष्किोण को चित्रित किया गया है। मध्यकालीन साहित्य में यह बदलाव विशेष रूप से देखने में आता है जिसके लिए तत्कालीन राजनीति परिस्थितियों की प्रमुख भूमिका रही है। तृतीय अध्याय 'हिन्दी कहानी में चित्रित नारी का मातृरूप' है। इसमें माता की महत्ता और हिंदी कहानी में आदर्श माता का चित्रण किस प्रकार से हुआ है इस का विवेचन है। माता के भावों में किस प्रकार कटुता आ जाती है, मातृत्व के अभाव में नारी किस प्रकार अकेलेपन और अजनवियत का अनुभव करती है, मूल्य बदलाव ने किस प्रकार माता के स्थान में परिवर्तन लाया, कहां वह नये और पुराने के बीच द्वन्द्व में है, इस का चित्रण हिन्दी कहानी के संदर्भ में किया गया है, आधुनिक जीवन में त्यागमयी माता

का अस्तित्व कैसे अनचाहा होता जा रहा है, छोटे परिवारों में उनका क्या स्थान है कैसे आधुनिक दम्पत्ति माता-पिता से अलग रहना चाहते हैं, इसको भी हिन्दी कहानी चित्रित करती है इतना ही नहीं, हिन्दी कहानी में ऐसे भी उदाहरण हैं जहां मां और पुत्र की पूरी मिथ गायब हो जाती है। चौथे अध्याय में नारी का पत्नी रूप हिन्दी के संदर्भ में व्याख्यायित है। वैदिक काल में पत्नी का स्थान गरिमापूर्ण था, विवाह के भी कई प्रकार होते थे विवाह से सम्बन्धित कई समस्याएं आती हैं। इस अध्याय में हिन्दी कहानी में नारी को आदर्श पत्नी के रूप में दिखाकर उसके समाजिक स्वर की ओर भी संकेत किया है। सामाजिक कुरीतियों के फलस्वरूप भारतीय समाज में नारी पर अत्याचार भी हुआ, वृद्ध-विवाह में उसे क्या झेलना पड़ा, उसकी कहां अवहेलना हुई, उसकी इच्छाएं अतृप्त रहीं, उसके पतिव्रत पर व्यंग हुआ और इन सब के फलस्वरूप पत्नी ने विद्रोह किया, पति पत्नी सम्बन्धों में भी तनाव आने लगा, विवाह संस्था के प्रति दृष्टिकोण बदला गया, इसका चित्रण हिन्दी कहानी में दिखाया गया है।

पांचवा अध्याय 'हिन्दी कहानी में चित्रित नारी' का प्रेमिका रूप' है इसमें प्रेम को एक महत्त्व-पूर्ण भाव मानकर इसकी मनोवैज्ञानिक व्याख्या की गई है। इस अध्याय में हिन्दी कहानियों में आदर्श प्रेमिकायों का चित्रण किया गया है। प्रेमिकाओं को समाज में अनेक कठिनाईयां झेलनी पड़ती है, अतः द्वन्द्व की स्थिति आती है, परम्परागत मूल्यों को चुनौती दी जाती है नारी प्रेम के अभाव में अकेलेपन का अनुभव करती है, इसका चित्रण इस अध्याय में किया गया है। आधुनिक युग में गहरी संवेदना की कहानियां भी लिखी गई। प्रेम के क्षेत्र में नई शैली पनप रही है और कुछ प्रेम विरोधी कहानियां लिखने का प्रचलन भी हो रहा है। छठा अध्याय है–हिन्दी कहानी में नारी का कन्या रूप' इसमें नारी पुत्री और बहन दोनों रूपों में चित्रित है। कन्या का समाज में स्थान, कमाऊ पुत्री का समाज में आदर,आर्थिक विषमतामें कन्या का धन अर्जन में साधन आदि का चित्रण इस अध्याय में दिखाया गया है। परिवारों में सदैव बहनों पर भाई का नियन्त्रण रहता था परन्तु अब वह आर्थिक बोझ भी बहन करती है जिसके फलस्वरूप बहनों का आदर परिवारों में होने लगा। भाई बहन के पवित्र सम्बन्ध पर भी सन्देह के फलस्वरूप स्थितियां बदल रही हैं जो हिन्दी कहानी के संदर्भ में दिखाया गया है।

सातवें अध्याय में विधवा के रूप में नारी-चित्रण को लिया गया है। प्राचीन काल से ही भारतीय विधवा नारी अत्यन्त विवश और दयनीय रही है। उसे अत्याचार, विवशता और आर्थिक संकट भोगना पड़ता है, नारी के लिए विधवा जीवन अभिशाप है, विशेषकर बाल-विधवाएं आधुनिक युग में किस प्रकार से आर्थिक उपार्जन करती हैं और जीवन-यापन करती हैं परन्तु फिर भी उनमें स्वाभाविक जीवन जीने की लालसा होती है। आज की कहानी में विधवाओं के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण अपनाया गया है। आज विधवा आर्थिक दृष्टि से इतनी विवश नहीं है जितनी कि मानसिक स्तर पर वह अकेली है, पुनर्विवाह के लिए वह सौदाबाजी भी करती है, नयी पुरानी परम्पराओं के बीच झूलती भी है इसका चित्रण हिंदी कहानियों के संदर्भ में किया गया है।

आठवां अध्याय है—'वेश्या के रूप में नारी का चित्रण'। इसमें नारी का वेश्य रूप और

वेश्यावृत्ति के कारणों को लिया गया है, हिन्दी में वेश्याओं के आर्थिक तनाव की कहानियां भी हैं और उनकी अतृप्त यौनवृत्ति की कहानियां भी हैं वेश्या का चित्रण साहित्य में प्राचीनकाल से ही उपलब्ध है, आज वेश्याओं का स्थान कालगर्ल्ज ने ले लिया है। हिन्दी कहानियों में स्वच्छन्द यौन चित्रण की प्रवृत्ति भी चल पड़ी है। जिसमें अपसमान्यता और समलैंगिक सम्बन्धों का चित्रण भी हुआ है।

नवें अध्याय में नारी का चित्रण अर्जिका के रूप में हुआ है। आज नारी शिक्षा प्राप्त कर अर्थोपार्जन कर रही है। मानव जीवन में अर्थ का अत्यधिक महत्व है। आज अर्जिका नारी के सामने अनेक समस्याएं और भूमिकाएं हैं, वे अध्यापिकाएं, डाक्टर, नर्स और संचालिकाएं हैं, नारी आज दफ्तरों में क्लर्क, रिसेपशनिस्ट और स्टैनो के पद पर हैं। ऐसी काम करने वाली नारी किस प्रकार अपना जीवन यापन करती है और किस प्रकार की मनःस्थिति से गुजरती है इस का विवेचन इस अध्याय में किया गया है। इस प्रकार से हिन्दी कहानी साहित्य में नारी चित्रण के विविध आयामों को यह शोध ग्रन्थ प्रस्तुत करता है।

डा० कृष्णा रैणा के अधीन कई विद्यार्थी एम० फिल० और पी० एच० डी० का शोधकार्य कर रहे हैं। विशेष रुचि इनकी हिंदी कहानी और हिमाचल के लोक साहित्य में है और अधिकतर शोध-प्रबन्ध इसी दिशा में है। अभी तक २० विद्यार्थियों ने इनके साथ शोध कार्य किया और कुछ कर रहे हैं। इनके लेख भारतवर्ष की विभिन्न स्तरीय पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो रहे हैं, कश्मीर से लेकर शान्ति निकेतन तक—कोई भी पत्रिका क्यों न हो डा० रैणा का योगदान पृष्ठों पर अंकित रहता है। विभिन्न शिवरों में भाग लेना और शोध-पत्र प्रस्तुत करने का सुअवसर भी इन्हें मिला है। भीड-भाड में रुचि न होने के कारण ये प्रतिदिन साहित्य के पढ़ने पढ़ाने और शोध कार्य में नियमित समय दे सकती है इसी कारण उनके कार्य में इनके व्यक्तित्व की छाप हमेशा मिलती है। 'डा० प्रभाकर माचवे के हिन्दी उपन्यास' नाम से इनकी एक और पुस्तक दिल्ली से प्रकाशित हो रही है। अध्ययन और शोध इनके जीवन का एक नियम बन गया है। इसके अतिरिक्त डा० रैणा कविता और कहानी में भी रुचि रखती है। इनकी कविता और कहानियां प्रकाशित हैं। लेखिका का कथन है कि मनुष्य लिखने का रोग अपने अंदर से ही लेकर आता है। वह पहले यह नहीं सोचता कि क्या लिखना चाहिए और क्या नहीं। उसमें भाव विचार कुछ इस तरह से आते हैं कि वह लिखने पर मजबूर होता है। यदि वह ऐसा नहीं करता तो उसे घुटन का अनुभव होता है वह जो कुछ लिखता है वह उसके पूरे वातावरण की प्रक्रिया में से होकर आता है और लेखक अपनी रचना या लेखन से अलग नहीं हो पाता।

o—●—o

सोमर्

१. निदेशक, शिक्षा विभाग, हि० प्र० द्वारा पत्राङ्क ई डी ऐन-एच (8)-6(3) 1/75, 24 फरवरी, 1975 के अनुसार प्रदेश के समस्त कालेजों, पाठशालाओं व जिला पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत

२. प्रदेश की समस्त पंचायतों के लिए निदेशक, पंचायती राज विभाग, हिमाचल प्रदेश सरकार द्वारा स्वीकृत।

हिमाचल कला-संस्कृति भाषा अकादमी, क्लिफ-एन-डी एस्टेट, शिमला द्वारा प्रसारित तथा
'कौसर प्रिंटिंग प्रेस', सोलन (हिमाचल प्रदेश) द्वारा मुद्रित।